Chap-2

द्वितीय अध्याय

संस्कृत और हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों का परिचय

ऐतिहासिकता से तात्पर्य

संस्कृत के ऐतिहासिक नाटक

हिन्दी के ऐतिहासिक नाटक

तुलनात्मक अध्ययन

सन्दर्भानुक्रम

ऐतिहासिकता से तात्पर्य

इस संसार में जो कुछ भी घटित हो चुका होता है उसे इतिहास कहते हैं। इसे विस्तृत फलक पर देखें तो सम्पूर्ण मानव जाति तथा मानव से इतर प्रकृति सभी इसमें समाहित होते हैं किन्तु सामान्यत: हम जिस अर्थ में इसे ग्रहण करते हैं उसमें मानव तथा उसके जीवन से संबंधित घटनाएं आती है। वैसे देखा जाय तो पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, प्रकृति, आदि सभी इतिहास के दायरे से बाहर नहीं हैं किन्तु इतिहास के स्वरूप का जब भी विश्लेषण किया जाता है तब उसकी विषय-वस्तु के केन्द्र में मानव जीवन ही मुख्य रूप से रहता है। इतिहास शब्द की व्याख्या करते हुए डॉ. धनंजय जी ने लिखा है कि--''इतिहास में 'इति' शब्द प्रत्यक्ष निर्देश को बताता है, 'हम' शब्द आगम या परम परोपदेश की सूचना देता है और 'आस' का अर्थ है आसन अथवा प्रतिष्ठा। इस प्रकार अतीत काल के वृतान्तों को प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित करने वाला तत्व इतिहास है।1 अर्थात इतिहास शब्द का तात्पर्य यह हुआ कि वीती हुई घटनाओं को जीवन्त रूप में प्रस्तुत करना इतिहास कहलाता है।

सामान्यत: भूतकाल की घटनाओं तथा उनसे संबंधित मानव जीवन की स्थिति, परिस्थिति तथा परिवेश आदि को चित्रित करना इतिहास है। 'इतिहास' शब्द का प्राचीन काल से इसी अर्थ में प्रयोग होता आ रहा है। रचनाकार भी इसे इसी अर्थ में प्रयुक्त करते रहे हैं। ऐतिहासिकता शब्द इतिहास का ही भाववाचक हैं इसलिए इतिहास शब्द के गुण, धर्म एवं उसकी विशेषताओं को अपने में समेटे हुए है। इतिहास जहाँ हमें पूर्व युगों की जानकारी देता है, वहीं उससे आने वाले क्षणों का आभास भी हो जाता है। हमारा साहित्य इसी आधार शिला पर टिका हुआ है। 72

साहित्य की तमाम विधाएं कहानी, कविता, उपन्यास, नाटक, संस्मरण, आत्मकथा आदि का आधुनिक रूप इतिहास के बीज से उद्‌भूत है।

इतिहास से हम मार्गदर्शन लेते हैं, वस्तुगत स्थितियों से अवगत होते हैं और उसे समसामयिक सन्दर्भ में ढालकर एक ढांचा तैयार करते हैं जो युगानुरूप होता है। हमारे साहित्यकारों का मत ऐतिहासिकता के सन्दर्भ में थोड़े बहुत शाब्दिक फेर-बदल के बावजूद यही रहा है। इसलिय ऐतिहासिकता से तात्पर्य हुआ कि- मानव जीवन के अतीत का तथा तत्संबंधी घटनाओं का सही मूल्यांकन करना और उसे कालक्रमानुसार आधुनिक युग में थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ प्रस्तुत करना।

साहित्य की तमाम विधाओं में से यदि किसी विधा को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है तो वह है नाटक। नाटक के उद्‌भव और विकास को लेकर हम पहले ही चर्चा कर चुकें हैं इसलिए उसकी पुनचर्चा करना पृष्ठपेषण मात्र होगा। किन्तु ऐतिहासिकता का विश्लेषण करने के लिए और नाटक के सन्दर्भ में ऐतिहासिकता के तात्पर्य को व्याख्यायित करने के लिए नाटक की उपयुक्त चर्चा करना अनपेक्षित नहीं होगा। नाटक का केन्द्रविन्दु तत्व है - अभिनय। जो साहित्य के अन्य विधाओं से इसे अलग करता है और इसके महत्व को बढ़ाता है भरतमुनि ने नाटक को लोकवृत्ति का अनुकरण कह है। अनुकरण के माध्यम से अभिनय पर ही बल देना चाहा है उन्होंने खास कर संप्रेषणीयता पर जोर दिया है। मानव-जवीन के तमाम पहलुओं को उसी रूप में प्रस्तुत करने की कला को नाटक की संज्ञा दी गयी। इसलिए कहा गया है----

"अवस्था या तु लोकस्य सुख दुःख समुद्भवा।
तस्यात्वभिनयः प्राज्ञैः नाट्याभिधीयते।।"2

इस प्रकार नाटक में अभिनय और उसकी संप्रेषणीयता जो दर्शक को सीधे-सीधे प्रभावित कर सके, के महत्व को प्रतिपादित किया गया है। अभिनय के अभी तक रटे-रटाये चार प्रकार ही प्राचीन काल से चले आ रहे हैं-1-आंगिक,2-कायिक,3-वाचिक और 4-आहार्य । किन्तु रंगमंच के बढ़ते कदम को देखते हुए तथा कुशल अभिनेता के कौशल्य के कारण या फिर रंगमंच पर किसी भी कारण अभिनेयता के द्वारा अपनी आवश्यकता एवं सुविधा के अनुसार अभिनय एंव संवाद में कभी-कभी परिवर्तन कर लिए जाते हैं। किन्तु यह अभिनय के किसी प्रकार के अन्तर्गत नहीं आता इसलिए अब आवश्यकता है अभिनय के एक और प्रकार की जिसे संशोधित अभिनय (Improve Action) संज्ञा से अभिजित किया जाता है। इन्हीं अभिनयों के द्वारा नाटक अपनी कथा, पात्र, घटना, स्थिति-परिस्थिति, परिवेश आदि को दर्शकों में संप्रेषित करता है।

इतिहास से उस युग की रचना प्रक्रिया तथा तद्संबंधी तमाम घटनाओं की जानकारी प्राप्त की जाती है इसके साथ ही साथ हम उनके मूल तक भी पहुँचना चाहते हैं। जैसे सोने को जितना तपाया जाता है उतना ही वह खरा साबित होता है उसी तरह से इतिहास में भी जितनी गहराई से डूबा जाय उतनी सच्चाई, यथार्थ का बोध होता है और रचना में तेजी एवं निखार आता है । इसी सन्दर्भ को रेखांकित करते हुए डॉ. धनंजय लिखते हैं कि--- "हम इतिहास के संवेदनात्मक और उत्प्रेरक क्षणों को पकड़कर युग की मूल चेतना को समझना चाहते हैं, उसे अपने सन्दर्भ में घटित करना चाहते हैं, उसके

जरिए समकालीनता की व्याख्या करना चाहते हैं, शिवाजी और महाराणा प्रताप और अकबर नामों से हटाकर उनके निजी आचरणों तथा कार्यों के परिप्रेक्ष्य में देखना चाहते हैं। इतिहास जब साहित्य में प्रयुक्त होता है तब उसका वही रूप नहीं रह जाता है जो उससे अलग होने पर रहता है। उसमें परिवर्तन होता है उसका स्वरूप कुछ भिन्न हो जाता है।''3

नाटककार तत्युगीन पृष्ठभूमि के साथ उन छोटे-बड़े प्रसंगों को चित्रित करता है तथा घटना एवं वातावरण के चित्रण के पश्चात् आन्तरिक भावचेतना की थी खोज करता है। इस प्रक्रिया से गुजरते हुए वह गौण रूप से कुछ सहायकपात्रों एवं घटनाओं को अपनी कल्पना से उपजाता भी है जो समकालीन संदर्भो के अनुकूल होते हैं।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज का सर्वश्रेष्ठ प्राणी इसलिए है कि उसमें सोचने, समझने और कार्य करने की क्षमता है। यही बौद्धिकता ही उसे अन्य प्राणियों से अलग करती है, नहीं तो पशु और मनुष्य में कोई भेद न होता। कहा भी गया है---

साहित्य संगीत कला विहीनः
साक्षात् पशु पुच्छ विषाणहीना
तृणं न खादन्तिऽपि जीवमानः
तद्भाग्धेयं परमं पशूनाम्।।

मनुष्य अपनी बौद्धिकता से अतीत का ज्ञान प्राप्त करता है, उससे अनुराग करता है, वह मात्र ज्ञानी ही नहीं सहृदय भी होता है। सहृदयता नाटककार का प्रमुख गुण है नाटककार जब इतिहास का अध्ययन करता हे तो वह इतिहास से घटना की विधिवत जानकारी प्राप्त करता है जैसे--समय, घटना, परिवेश, पात्र आदि । डॉ. विश्वप्रकाश दीक्षित

लिखते हैं कि--- ''इतिहास के अध्ययन का अर्थ तिथियों घटनाओं और राजाओं के नामों को याद करना लेना भर नहीं है। इतिहास तो हमें बताता है कि हमें क्या करना चाहिए क्या नहीं, किस तरफ जाने में पतन है, किधर जाने में उत्थान-कहाँ मरण है, कहाॅ जीवन।''4 यह सच है कि साहित्यकार अतीत का अध्ययन करके वर्तमान सन्दर्भानुसार इसे लागू करता है न कि पूरे का पूरा अतीत से ग्रहण करता है। वर्तमान में अतीत की जितनी उपयोगिता वह समझता है उतने को ही वह ग्रहण करता है बाकी को त्याग देता है। साहित्यकार का स्वभाव सूप के स्वभाव की तरह होता है जो कबीर के इस दोहे में स्पष्ट है---

साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय ।
सार-सार को गहि रहे थोथा देई उड़ाय ।।

साहित्यकार व नाटककार सभी समग्रता में इतिहास को ग्रहण नहीं करते, इस सन्दर्भ में डॉ. जोशी जी लिखते हैं कि--''इतिहासकार अपने साथी उपकरणों के द्वारा जो सृष्टि करता है वह देश, काल, घटना ओर संस्कृति के उत्तरोत्तर एवं कमिक परिवर्तनों की यथार्थ सूची अर्थात इतिहास होता है। नाटककार उस सूची के अंश विशेष को ग्रहण कर उसे नाटक के सूक्ष्म शरीर में इस प्रकार सुसज्जित कर देता है कि वह साहित्य का रस-पूर्ण अंग वन जाता है।''5 यहाँ पर इतिहासकार और नाटककार के कार्यो का सूक्ष्म एवं व्यवस्थित अन्तर प्रस्तुत किया गया है जो यथार्थ पूर्ण है।

रचनाकार एक निश्चित उद्देश्य को लेकर अपने लेखन पथ पर

अग्रसरित होता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि रचनाकार रचना लिखने तो बैठ जाता है लेकिन उस समय तक वह किसी उद्देश्य तक नहीं पहुँचा होता लेकिन जब वह रचना संप्रेषित होती है तब उसमें उद्देश्य अवश्य दिखायी देती है। कभी-2 उसमें यदि कोई प्रयोजन न भी हो तो मनोरंजन अवश्य होता है और वही उसका प्रयोजन बन जाता है इसलिए नाटक के उद्देश्य को आनन्द तक ही सीमित रखा गया है। इसे डॉ. धनंजय ने इस प्रकार व्यक्त किया है--"आचार्यो ने जहाँ साहित्य के विविध उद्देश्यों की गणना की वहाँ नाटक को केवल आनन्द तक ही सीमित रखा। कालिदास ने "मालाविकाग्निमित्रं' में इसी धारणा की पुष्टि करते हुए नाटक को भिन्न रूचि के लोगों का अकेले मनोरंजन करने वाला स्वीकार किया है।"6

इस प्रकार इतिहास ऐतिहासिकता, इतिहास तत्व आदि शाब्दिक जाल में न फंसते हुए ऐतिहासिक नाटककारों में दो तरह की प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं। 1.एक तो है जब राष्ट्र स्वतंत्र, समाज उन्नत, जन-जीवन सम्पन्न था तब भी ऐतिहासिक नाटक लिखे गये तथा 2.जब राष्ट्र परतंत्र, समाज विश्रृंखलित और जन-जीवन संत्रस्त था तो भी ऐतिहासिक नाटक लिखे गये इसलिए ऐतिहासिक नाटक लिखने के लिए कोई एक ही उद्देश्य रहा हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। नाटककारों ने भिन्न-भिन्न स्थितियों परिस्थितियों और मन:स्थितियों में प्रवृत्त होकर नाटक लिखे हैं। डॉ. धनंजय ने अपने ढंग से ऐतिहासिक कथावस्तु के आधार को प्रस्तुत किया है तो जगदीश जोशी ने अपने ढंग से। किन्तु सबने भले ही ऐतिहासिक नाटकों का प्रस्तुतीकरण अपने-अपने ढंग से किया हो लेकिन ऐतिहासिकता के परिप्रेक्ष्य में वे सभी एक हो जाते हैं। ऐतिहासिकता के अर्थ, परिभाषा एवं तत्व आदि को कोई भी नाटककार नजरन्दाज नहीं करता।

संस्कृत के ऐतिहासिक नाटकों का संक्षिप्त परिचय

नाट्य का सबसे पहला स्फुरण शायद उस समय हुआ होगा, जिस समय मनुष्य ने अपने आन्तरिक आह्लाद को विविध क्रिया-कलापों जैसे वाचिक, कायिक, सात्विक और आंगिक चेष्टाओं के द्वारा अभिव्यक्त किया होगा। वैसे नाट्य का मूल तो वेदों में ही प्राप्त होता है लेकिन इनके मूल में भी मनुष्य की समस्त भावनाएं दिखायी देती है, बिना भावनाओं के नाट्य की अनुभूति पाठक या दर्शक कर ही नहीं सकता है इसी सन्दर्भ को ध्यान में रखते हुए डॉ. जयकुमार जलज जी लिखते हैं कि-"मैक्समूलर, सैलवनलेवी, फान श्रायडेर तथा ओल्डेन वर्ग की भाँति चाहे हम यह स्वीकार करें कि संस्कृत नाटकों के आदि स्रोत वेदों में उपलब्ध कर्मकाण्ड के मंत्र है, चाहे कीथ की भांति महाकाव्यों में उनके जन्म को संबंध करें और चाहे कोनो तथा हिलेबाँ की भाँति उनकी उत्पत्ति को लौकिक माने, इसमें सन्देह नहीं कि संस्कृत नाट्य-स्फुरणों का संबंध एक समय धर्म से जुड़ गया और धार्मिक कर्मकाण्डों ने इसके विकास में योग दिया।"7 आचार्य भरतमुनि ने भी नाटक के महत्व का प्रतिपादन नाट्यशास्त्र (1/106 से 115 तक) में किया है। आचार्य भरतमुनि भी नाटक में भावनाओं का होना नितान्त आवश्यक मानते हैं। आचार्य भरत का कथन है कि "इसमें केवल धर्म और देवों की ही चर्चा नहीं होती है अपितु विश्व की समस्त भावनाओं का प्रदर्शन किया जाता है। इसमें जीवन की सभी घटनाओं का चित्रण रहता है, जैसे- धर्म, मनोरंजन, हास्य, श्रृंगार, श्रम आदि। प्रत्येक दर्शक अपनी भावना के अनुकूल फल प्राप्त करता है। नाटक के द्वारा दर्शकों में उत्साह की वृद्धि होती है। यह धनियों के मनोरंजन, दु:खितों के लिए

आश्वासन, व्यवसायियों के लिए आय का साधन और व्याकुलों के लिए शान्तिप्रद है। यह बड़े से लेकर छोटे तक सभी के लिए हितोपदेशक, मनोरंजक और सुखप्रद है।''8

संस्कृत नाट्य साहित्य की परम्परा हमें ऋग्वेद् से ही दिखायी देती है। आचार्य भरत ने भी इसके विषय में कहा है कि ब्रह्मा ने चारों वेदों से रसादि सार-तत्व लेकर पंचम वेद नाट्य वेद की रचना की है--

''जग्राह पाठ्यमृग्वेदात सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान रसानाथर्वणादपि।।''9

लेकिन यदि संस्कृत साहित्य में नाटकों की बात की जाती है तो इसकी उपलब्ध परम्परा का प्रवर्तन महाकवि भास से होता है और भास को इस परम्परा का प्रथम नाटककार माना जाता है। कालिदास के नाटकों में नाट्यकला की जो चरमसीमा दिखलायी पड़ती है उससे यह सिद्ध हो जाता है कि कालिदास के पूर्व भी नाट्य साहित्य की पुष्ट परम्परा विद्यमान थी। स्वयं कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्रम्'नाटक की भूमिका में भास, सौमिल्ल और कवि पुत्र आदि का उल्लेख किया है-

''प्रथितयशसां भाससौमिल्ल कवि पुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्यकवे: कालिदासस्य कृतौ बहुमन्यमान: ।''10

यदि देखा जाय तो नाट्य साहित्य की इस सुदीर्घ परम्परा में नाटकों का प्रारम्भ भास से ही माना जाता है और नि:सन्देह भास को संस्कृत का प्रथम नाटककार। इसे कालिदास ने भी स्वीकार किया है, जिस प्रकार भास को प्रथम नाटककार माना जाता है उसी प्रकार उनके

द्वारा रचित 'स्वप्नवासवदत्तं' तथा प्रतिज्ञायौगन्धरायणं को संस्कृत का प्रथम ऐतिहासिक नाटक माना जाता है। भास संस्कृत के प्रथम ऐतिहासिक नाटककार एवं नाटकों के प्रवर्तक हैं, इसे स्वीकार करते हुए ए0 एस0 पी0 अय्यर जी लिखते है कि "भास संस्कृत के प्रथम नाटककार तो हैं ही, किन्तु इसके साथ ही स्वप्नवासवदत्तम् तथा-- प्रतिज्ञायौगन्धरायणं के रचयिता होने के कारण उन्हें संस्कृत का प्रथम ऐतिहासिक नाटककार होने का भी गौरव प्राप्त है।"11 इसी संबंध डॉ. श्याम शर्मा का मत भी उचित ही होगा उनका मानना है कि--"हम भास को न केवल संस्कृत नाटकों का पिता अपितु भारतीय नाटकों का पिता तथा 'संस्कृत के ऐतिहासिक नाटकों' का प्रवर्तक कहना अधिक उचित समझते हैं।"12

ऐतिहासिक नाटक के दो मूलभूत तत्वों- इतिहास तथा नाट्यकला के संयोग से ही ऐतिहासिक नाटक का निर्माण होता है। संस्कृत के ऐतिहासिक नाटक पहले नाटक हैं तत्पश्चात् ऐतिहासिक। ऐतिहासिक नाटक लिखते समय नाटककार ने ऐतिहासिकता का प्रयोग किस सीमा तक तथा किस दृष्टिकोण से किया है आदि के निवारणार्थ संस्कृत के ऐतिहासिक नाटकों के विभिन्न भेद किये जा सकते हैं--

विशुद्ध ऐतिहासिक नाटक

(1) संतुलित सफल ऐतिहासिक
(2) सफल ऐतिहासिक
(3)ऐतिहासिक
(4) संतुलित ऐतिहासिक

किसी भी नाट्य रचना के लिए जब नाटकाकर विश्रत ज्ञात एवं प्रमाणिक इतिहास से पात्रादि एकत्रित करके संबंधित घटनाओं तथा चरित्र को नाट्य रूप में प्रस्तुत करता है तब उसे विशुद्ध ऐतिहासिक नाटक की श्रेणी में रखा जाता है। इन नाटकों में कथानक तथा पात्र विशुद्ध ऐतिहासिक होते हैं, इस प्रकार के नाटकों में विशाखदत्त का मुद्राराक्षस तथा भास के नाटकों में विशाखदत्त का मुद्राराक्षस तथा भास के नाटकों का समावेश किया जा सकता है।

इतिहास प्रधान ऐतिहासिक नाटक

(1) घटना प्रधान
(2) चरित्र-प्रधान
(3) प्रशस्ति परक

जिन नाटकों में इतिहास तत्व प्रबल होकर मुख्य हो जाता है और कल्पना तत्व गौण उसे इतिहास प्रधान ऐतिहासिक नाटक की श्रेणी में रखा जा सकता है। इस प्रकार के नाटकों में हम्मीर-मर्दन, राज-विजय, प्रतापरूद्र, कल्याण आदि नाटकों का समावेश किया जा सकता है।

कल्पना प्रधान ऐतिहासिक नाटक

(1) काल्पनिक ऐतिहासिक नाटक
(2) कल्पना प्रधान् ऐतिहासिक

इस प्रकार के नाटकों की श्रेणी में उन नाटकों को रखा जाता है जहाँ कल्पना इतिहास को अभिभूत कर लेती है। इस प्रकार के नाटकों में केवल पात्रों के नाम या वातावरण ही ऐतिहासिक होते हैं इसके अन्तर्गत संस्कृत की नाटिकाएं तथा कौमुदी महोत्सव आदि का समावेश किया जा सकता है।

संस्कृत के ऐतिहासिक नाटकों की निश्चित संख्या निर्धारित करना कठिन है, कारण कि ऐतिहासिक नाटकों में भी कुछ प्रकाशित रचनाएं हैं तो कुछ अप्रकाशित। हमें जिन ऐतिहासिक नाटकों की चर्चा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में करना है वे इस प्रकार है--

प्राचीन ऐतिहासिक नाटक

⇨ प्रतिज्ञायौगन्धरायण (भास)
⇨ स्वप्नवासवदत्तम् (भास)
⇨ मालविकाग्निमित्रम् (कालिदास)
⇨ मृच्छकटिकम् (शूद्रक)
⇨ मुद्राराक्षस (विशाखदत्त)
⇨ देवीचन्द्रगुप्त (विशाखदत्त)

मध्यकालीन तथा आधुनिक ऐतिहासिक नाटक

⇨ कौमुदी महोत्सव (विज्जिका)
⇨ हम्मीर मर्दन ( )

इनके अलावा प्रतिज्ञाचाणक्य, ललित विग्रहराज, कर्णसुंदरी, परिजात मंजरी, रामवर्म विलास, सेवन्तिका परिणय तथा राजविजय नाटकं इत्यादि अपूर्ण नाट्य कृतियाँ भी प्राप्त होती हैं । लेकिन इनके बारे में कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं होता । मुख्यतः

जिनकी चर्चा की जाती है उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं ।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण (भास)

उदयन कथा पर आधारित प्रस्तुत नाटक में कुल 4 अंक है। प्रस्तुत कृति में उद्‌यन और अवन्तिकुमारी वासवदत्ता के विवाह की रहस्यमय कथा वर्णित है कौशाम्बी के आखेट प्रेमी राजा उद्‌यन को कृत्रिम हाथी के छल से उज्जयिनी-नरेश महासेन ने पकड़ लिया। एक कुशल संगीतज्ञ होने के कारण कुछ दिन बाद उद्‌यन को राजकुमारी वासवदत्ता का संगीत शिक्षक नियुक्त किया जाता है। शिक्षक की नियुक्ति होने के बाद उद्‌यन तथा वासवदत्ता एक दूसरे पर परस्पर अनुरक्त हो जाते हैं। उदयन का मन्त्री यौगन्धरायण राजा को छुड़ाने में काफी मदद करता है, मन्त्री न केवल राजा को ही बन्धन से छुड़ाता है बल्कि कपट व्यवहार से वासवदत्ता को भी राजा के साथ भगा देता है। यह संपूर्ण नाटक मन्त्री यौगन्धरायण की दृढ़ प्रतिज्ञा और उसकी कुटिल का द्योतक है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् नाटक में वासवदत्ता की वैवाहिक घटना नाटक की मुख्य कथा है। नाटक में वासवदत्ता, उद्‌यन, प्रद्योत महासेन आदि सभी पात्र पूर्ण ऐतिहासिक हैं। कौमुदीमहोत्सव, वीणा, वासवदत्ता तथा हर्षचरित आदि ग्रन्थों द्वारा नागवन की यात्रा और उदयन के बंदी होने की कथा पुष्ट एवं प्रमाणित प्रतीत होती है। दश-रूपक इत्यादि, अलंकार ग्रन्थों में भी इस वृतान्त का उल्लेख प्राप्त होता है, अत: उद्‌यन को बंदी बनाये जाने की समस्त घटनाएं पूर्ण रूपेण ऐतिहासिक लगती है। भास ने इसके साथ ही साथ कल्पना का भी सहारा लिया

है जिससे तत्कालीन यौगन्धराण की कूटनीतिक ऐतिहासिकता प्रस्तुत होती है कुल मिलाकर यह एक विशुद्ध ऐतिहासिक नाटक है। कथा सरित सागर में प्रतिज्ञा के पात्रों के ऐतिहासिक होने का वर्णन प्राप्त होता है। इसी सन्दर्भ में डॉ. श्याम शर्मा भी पात्रों को ऐतिहासिक मानते हुए लिखते हैं कि ''इस नाटक में महामात्य यौगन्धरायण रूमणवान नामक दो प्रमुख पात्रों का प्रयोग है दोनों ऐतिहासिक है। कथासरित सागर आदि में दोनों का प्रयोग हुआ है। ''यौगन्धरायण'' को 'युगन्धर' का पुत्र बताया गया है।13 तथा रूमण्वान की सुप्रतीक का पुत्र कहा गया है।14 किन्तु भास ने रूमण्वान को एक मंत्री के रूप में निर्दिष्ट किया है। जबकि कथासरितसागर में सेनापति के रूप में निर्दिष्ट किया गया है।15

स्वप्नवासवदत्तम् (भास)

इस नाटक में कुल 6 अंक है। यह भी उदयन कथा पर आधारित नाटक हैं। इस नाटक को प्रतिज्ञा का उत्तरार्ध कहा जा सकता है। प्रस्तुत नाटक में राजकीय कथावस्तु भूमिका के रूप में प्रस्तुत हुई है और उदयन तथा वासवदत्ता के दाम्पत्य प्रेम की अपूर्व गाथा के रूप में समाजिक कथानक प्रस्तुत किया गया है। पांचवे अंक के स्वप्न दृश्य के आधार पर ही संभवत: इस नाटक का नामकरण हुआ होगा। नाटक में उदयन की दूरदर्शिता से यह दिखाया गया है कि यौगन्धरायण प्रजा को चकमा देने के उद्देश्य से वासवदत्ता को लावणक वन में जल जाने की झूठी खबर फैला देता है। तथा उसका वेश परिवर्तन करके अवन्तिका के रूप में उसे मगधदेश की राजकन्या पद्मावती को सौंपता है साथ ही साथ यौगन्धरायण को भी मृत घोषित करता है। वासवदत्ता

के मरने की खबर सुनकर उदयन बहुत दु:खी होता है और पद्मावती से पुन: विवाह कर लेता हैं कुछ समय पश्चात् वासवदत्ता को पुन: राजा के सामने प्रस्तुत किया जाता है दोनों आनन्दानुभूति करते हैं यही पर नाटक समाप्त हो जाता है। सम्पूर्ण नाटक में नाटकीय घटनाओं का चित्रण भास ने बड़े ही बारीकी से किया है। नाट्यकला की श्रेष्ठता प्रस्तुत करना ही भास की श्रेष्ठता है।

जैसा कि सर्वविदित है कि महानविभूतियों के जन्म को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद रहा है चाहे कालिदास हो चाहे शूद्रक उसी प्रकार महाकवि भास के जन्म समय तथा कृति को लेकर आलोचकों के दो पक्ष सामने आते हैं, एक स्वीकार करने वाला सकारात्मक पक्ष तथा दूसरा अस्वीकार करने वाला नकारात्मक पक्ष। कुछ विद्वान आलोचक भास रचित स्वप्नवासवदत्तम् को भास की कृति मानते है तो दूसरे इस कृति को भास की मौलिक कृति न मानकर किसी अन्य की कृति स्वीकार करते हैं। पं0 राजशेखर स्वप्न को नि:संदिग्ध रूप से भास रचित स्वीकार करते हैं और इसके विषय में लिखते हैं कि --"भास का स्वप्न ही आलोचकों की अग्नि में सफल सिद्ध हुआ है। अर्वाचीन समालोचकों ने विरोधी मतों का खण्डन तथा जिज्ञासाओं का समाधान करके स्वप्न को नि:संदिग्ध रूप से भास का स्वीकार किया है।"16 दूसरी तरफ प्रो0 देवधर ने स्वप्नवासवदत्तम् को भास का मौलिक नाटक तो नहीं स्वीकार किया है लेकिन स्पष्ट रूपेण अस्वीकार भी नहीं किया है। प्रो. देवधर जहाँ एक तरफ स्वप्नवासवदत्तम् को भास का स्वीकार करते हैं वहीं दूसरी तरफ उदयन कथा पर आधारित दोनों नाटकों (प्रतियौगन्धरायण तथा स्वप्नवासवदत्तम्) की समानता तथा संबंध की भी स्वीकृति देते हैं। वहीं दूसरी ओर प्रस्तुत नाटक को निष्कर्षत: उन्होंने

भास की उत्कृष्ट मौलक कृति न मानकर रंगमंचीय रूपान्तर ही माना है।''

मृच्छकटिकम् (शूद्रक)

प्रस्तुत नाटक महाकवि शूद्रक द्वारा रचित एक अनुपम कृति है। इसकी अनुपमेयता तथा प्रसिद्धि का सबसे बड़ा करण है नाटक की यथार्थवादिता। नाटक में कुल 10 अंक हैं। विद्वान आलोचकों ने सभी अंकों का अलग-अलग नाम दिया है। जैसे- 'अलंकारन्यास' द्यूतकर, सन्धिच्छेद, मदनिका शर्विलिक, दुर्दिन, प्रवहण-विपर्यय, आर्यकापहरण, वसन्त सेना मोटन, व्यवहार तथा अंतिम अंक का नाम संहार है।

प्रस्तुत नाटक भास रचित चारूदत्त पर आधारित है। इस नाटक का कथानक इस प्रकार है- उज्जयिनी की प्रसिद्ध वेश्या वसन्तसेना है, जिस पर चारूदत्त नामक ब्राह्मण अनुरक्त है। दूसरी तरफ प्रसिद्ध वारवनिता वसन्तसेना को राजा का श्यालक (शकार) उसे अपने वश में करना चाहता है। इसी सिद्धि हेतु एक दिन रात्रि के समय विट तथा चेट के साथ शकार वसन्तसेना का पीछा करते हैं किन्तु मूर्ख शकार के कथन से वसन्तसेना को यह पता चल जाता है की आर्य-चारूदत्त का मकान बॉई तरफ है। अत: वह शकार को चकमा देकर चारूदत्त के घर में घुस जाती है। शकार चारूदत्त के घर में घुसना चाहता है लेकिन विदूषक उसे रोकता है। वसन्तसेना शकार से बचने के लिए अपने कीमती आभूषण चारूदत्त के घर पर ही छोड़ देती है। संवाहक जो पहले चारूदत्त की सेवा में था वह एक पक्का जुआरी बन जाता है और जुए में बहुत सा धन हारकर चारूदत्त के घर जाता है चारूदत्त उसे ऋणमुक्त कर देते हैं तत्पश्चात् वह एक बौद्ध भिक्षु बन

जाता है। इसी बीच शकार वसन्तसेना के भ्रम में रदनिका को पकड़ लेता है, जिससे मैत्रेय उसे बहुत भला-बुरा कहता है। चारूदत्त वसन्त सेना को सुरक्षित उसके घर पर पहुँचा देता है।

तीसरे अंक के प्रारंभ में ही वसन्तसेना की दासी मदनिका को उसका प्रेमी शर्वलिक, मदनिका को मुक्त कराने हेतु ब्राह्मण होते हुए भी चारूदत्त के घर में सेंध मारता है और वसन्त सेना के धरोहर आभूषणों को चुरा लेता है। जब चारूदत्त की भार्या धूता को यह पता चलता है तब वह अपने पति को कलंक से बचाने के लिए अपनी रत्नमाला विदूषक के हाथ वसन्तसेना के घर भेजती है। चतुर्थ अंक में शर्विलिक द्वारा चुराए गए अलंकारों को वसन्त सेना को देकर मदनिका को मुक्त कराता है।

एक दिन जब चारूदत्त का पुत्र रोहसेन अपनी मिट्टी की गाड़ी को लेकर वसन्तसेना के घर खेलने जाता है उस समय वसन्तसेना अपने गहनों से उसकी मिट्टी की गाड़ी भर देती है तथा उससे कहती है "इससे सोने की गाड़ी खरीद लेना।" 'मृच्छकटिकम्' (मिट्टी की गाड़ी) नाम इसी घटना का द्योतक है। इसी घटना के आधार पर इस कृति का नाम 'मृच्छकटिकम्' पडा़ है। वसन्तसेना प्रणय व्यापार हेतु चारूदत्त के घर जाती है चारूदत्त पुष्पकरण्डक नामक वन में गया हुआ है यह बात जब वसन्तसेना को जब पता चलती है तब वह भी उससे मिलने के लिए वन में जाती है किन्तु भ्रम से वह चारूदत्त की गाड़ी में न बैठकर पास में खड़ी शकार की गाड़ी में जा बैठती है। इधर राजा पालक सिद्ध की वाणी पर विश्वास करके गोपाल का पुत्र आर्यक राजा बनेगा इस कारण उसे कैदखाने में बंद कर देता है। आर्यक कारागृह से भागकर चारूदत्त की गाड़ी में जा बैठता है। श्रृंखला की आवाज को भूषण की झनझनाहट समझकर गाड़ीवान को ऐसा प्रतीत होता है कि

चारूदत्त आकर गाड़ी में बैठ गया है और वह गाड़ी हाँक देता है। रास्ते में दो सिपाही गाड़ी की तलाशी लेते हैं उनमें से एक आर्यक को रक्षा का वचन देता है और अपने साथी से किसी बहाने झगड़ा करके उसे बचाता है। आर्यक चारूदत्त के वगीचे में जाकर मिलता है।

वसन्त सेना जब पुष्पकरण्डक उद्यान में पहुँचती है और वह प्राणप्रिय चारूदत्त के स्थान पर शकार को देखती है तब वह घबड़ा जाती है। शकार वसन्तसेना से प्रणयार्थ याचना करता है, वह इस याचना को अस्वीकार कर देती है, परिणाम स्वरूप शकार क्रुद्ध होकर वसन्तसेना का गला घोंट देता है। वसन्तसेना मूर्च्छित होकर गिर जाती है। संवाहक जो पहले भिक्षु बन गया है, वह वसन्तसेना को समीप के बगीचे में ले जाता है तथा योग्य उपचार से उसे पुनः जीवित कर देता है। शकार पर वसन्तसेना की हत्या का अभियोग लगता है। कचहरी में जज के सामने मुकदमा पेश होता है उसी समय चारूदत्त का पुत्र रोहसेन वसन्तसेना के द्वारा दिये गये गहने को 'मृच्छकटिकम्' (मिट्टी की गाड़ी) में लेकर आता है इसी आधार पर चारूदत्त को फाँसी का हुक्म होता है। इसी समय राज्यपरिवर्तन होता है, चारूदत्त का परम मित्र आर्यक पालक को मारकर स्वयं राजा बन जाता है और वह चारूदत्त को फाँसी से मुक्त कर देता है तथा मिथ्याभियोग के कारण शकार को फाँसी का हुक्म देता है, लेकिन चारूदत्त के कहने से क्षमा कर देता है।

अन्त में वसन्तसेना और चारूदत्त का विवाह सम्पन्न हो जाता है। प्रेम-मिलन के साथ यह नाटक समाप्त हो जाता है।

प्रस्तुत नाटक समाज के निम्नस्तरीय व्यक्तियों के चित्रों को व्यक्त करता है, कहीं चोर ब्राह्मण को चोरी के लिए, जरूरी साधनों

को इकट्ठा करते पाते हैं, तो कहीं जुवाड़ियों को कौड़ी फेंकते देखते हैं तो कही पुलिस के आदमियों को गाड़ी की तलाशी लेते हुए देखते हैं और कहीं धन के लोभ से शहर की मशहूर गणिका की हत्या करते हुए दिखते हैं-इस प्रकार सम्पूर्ण नाटक समाज के सभी श्रेणियों को चित्रित करने वाली एक सफल कृति है। नाटक में यथार्थवादी दरिद्रता का स्वाभाविक स्वयमनुभूत वर्णन जैसा इस नाटक में मिलता है अन्यत्र दुर्लभ है---

''दारिद्रयान्मरणाद्वा मरणं मम रोचते न दारिद्रयम्।
अल्पक्लेशं मरणं दारिद्रयमनन्तकं दुःखम्।।''17

सांस्कृतिक मूल्यांकन की दृष्टि से ''मृच्छकटिकम्'' तत्कालीन सामाजिक स्थिति को रूपायित करने वाली महत्वपूर्ण कृति मानी जाती है। इस नाटक में समाज के प्रत्येक वर्ग का यथार्थ रूप वर्णित है। नाटक की सामाजिकता और ऐतिहासिकता पर दृष्टिपात करते हुए डॉ. श्याम शर्मा लिखते हैं कि-''सामान्यतया मृच्छकटिकम् का सर्वाधिक महत्व एक मात्र सफल सामाजिक नाट्यकृति होने के कारण ही माना जाता है किन्तु हम संस्कृत के ऐतिहासिक नाटक के रूप में भी मृच्छकटिकम को महत्वपूर्ण मानते हैं। इसमें संदेह नहीं कि मृच्छकटिकम सफल सामाजिक नाटक है। किन्तु सामाजिक नाटक के रूप में सफलता का प्रमुख अनुषांगिक रूप में संश्लिष्ट इसकी ऐतिहासिक घटना भी है। यदि मृच्छकटिकम् से ऐतिहासिक घटना को निकाल दिया जाय तो निश्चित है कि मृच्छकटिकम् का सामाजिक पक्ष तथा सांस्कृतिक प्क्ष निर्जीव, निरर्थक तथा कान्तिहीन हो जायगा।''18

चरित्र-चित्रण में शूद्रक खूब सिद्धहस्त थे, इनके पात्र जीते-जागते सजीवता की मूर्ति से लगते हैं। नाट्यशास्त्र के अनुकरण प्रकरण का

नायक धीर प्रशान्त तथा ब्राह्मण या वणिक होना चाहिए। चूँकि यह एक प्रकरण है और इस प्रकरण का नायक चारूदत्त ब्राह्मण है तथा धीर प्रशान्त भी। शूद्रक ने विट के द्वारा चारूदत्त का वर्णन इन शब्दों में व्यक्त किया है--

''दीनानां कल्पवृक्ष: स्वगुणफलनत: सज्जनानां कुटम्बी
आदर्श शिक्षितानां सुचरितनिकष: शीलवेलासमुद्र:।

सत्कर्ता नावमन्ता पुरूष गुणनिधिर्दक्षिणोदारसत्वो
ह्येःश्लाध्य: जीवत्याधिकगुणतया चोच्छवसन्तीव चान्ये।।''19

मृच्छकटिकम् संस्कृत में एक उच्चकोटि का सामाजिक नाटक है। इस नाटक में नाटककार ने निम्नस्तरीय व्यक्तियों को रूपायित करना चाहा है। यही इसकी विशिष्टता है, इसकी विशिष्टता को ध्यान में रखते हुए श्री बलदेव उपाध्याय जी लिखते हैं कि--''संस्कृत का कवि चोरों, जुवाड़ियों, बदमाशों तथा रंडीबाजों का चरित्र वहुत ही कम चित्रित करता है, परन्तु शूद्रक के हाथों ये ही जीव अपने स्वाभाविक वैभव के साथ रंगमंच की शोभा बढ़ाते हैं। मृच्छकटिकम् का आकर्षण एकदेशीय न होकर सार्वभौम है, और यही इसकी लोकप्रियता का मुख्य हेतु है। पाश्चात्य् आलोचक शूद्रक की इस कृति पर रीझता है और इससे जनजीवन की झाँकी प्रस्तुत करने वाली अपूर्व और बेमिसाल रचना मानता है।''20

मृच्छकटिकम् ऐतिहासिक नाटक की अपेक्षा सामाजिक नाटक के रूप में अधिक जाना जाता है। नाटक की ऐतिहासिकता से ज्यादा लोग इसके सामाजिकता से परिचित हैं। मृच्छकटिकम् सामाजिक, ऐतिहासिक

नाटक होते हुए भी पूर्ण रूपेण नाट्यकला से ओत प्रोत है। और यही कारण है कि यह नाट्यकृति नाट्य साहित्य में सर्वाधिक सफल हुई है। इसी सन्दर्भ को ध्यान में रखते हुए डॉ. श्याम शर्मा जी लिखते हैं--''संस्कृत के नाटक प्राय: भारतीय परिसीमा में ही अभिसृष्ट हुए हैं, उनमें भारतीय समाज तथा संस्कृति का प्रतिबिम्बन हुआ हैं किन्तु मृच्छकटिकम् एक ऐसा नाटक है जिसमें कुछ सार्वदेशिक तत्व है तथा सार्वजनीनता एवं सार्वभौमिकता की भी झलक है। यही कारण है कि मृच्छकटिकम् भारतीय जनता को ही प्रिय नहीं है और न केवल भारतीय संस्कृति, आदर्श तथा कला के प्रेमियों को ही प्रिय है, अपितु विश्व के रसिकों को समान रूप से प्रिय है।''21

मालविकाग्नि मित्रम् (कालिदास)

महाकवि कालिदास संस्कृत नाट्य साहित्य के सर्वोत्कृष्ट नाटककार माने जाते हैं। ''मालविकाग्निमित्रम्'' नाटककार की प्रथम नाट्यकृति मानी जाती है। प्रस्तुत नाटक में कुल 5 अंक हैं। नाटक का नायक अग्निमित्र एक ऐतिहासिक व्यक्ति है। नाटक का कथानक इस प्रकार है। नाटक का नायक अग्निमित्र तथा नायिका मालविका है। यज्ञसेन राजा माधवसेन पर आक्रमण करता है, माधवसेन की बहन मालविका विदिशा की ओर भागती है, रास्ते में बनवासी उस पर आक्रमण करते हैं बड़ी कठिनाई को पार करते हुए वह गन्तव्य स्थान पर पहुँचकर रानी धारिणी का आश्रय प्राप्त करती है। रानी धारिणी मालविका को नृत्यादि सिखाने के

लिए नाट्याचार्य गणदत्त को शिक्षक नियुक्त करती है। मालविका की सुन्दरता पर राजा मुग्ध न हो जाय इसलिए रानी धारिणी उसे हमेशा राजा से छिपाकर रखती है। संयोगवश एक दिन राजा मालविका का चित्र देखकर उस पर मोहित हो जाता है और मालविका से साक्षात्कार करने के लिए व्याकुल रहने लगता है। विदूषक अग्निमित्र के समक्ष मालविका को लाने के लिए एक नृत्य-प्रदर्शन की योजना बनाताहै। ठीक इसी प्रतिक्रिया स्वरूप नाट्याचार्य गणदत्त और हरदत्त के बीच योग्यता विषयक विवाद होता है। इसका निर्णय करने के लिए कि कौन श्रेष्ठ है, कौशिकी नामक एक सन्यासिनी को न्यायाधीश नियुक्त किया जाता है। कौशिकी की अध्यक्षता में दोनों नाट्याचार्यो की शिष्याओं के द्वारा अभिनय कला-प्रदर्शन की योजना होती है, धारिणी इसे रोकने का प्रयत्न करती है किन्तु असफल रहती है। कौशिकी कला-प्रदर्शन के आधार पर मालविका का नृत्य-प्रदर्शन श्रेष्ठ बताती है। जिसके फलस्वरूप गणदत्त विजयी होता है। राजा मालविका पर मंत्रमुग्ध हो जाते हैं और उसे प्राप्त करने के लिए विदूषक से युक्ति पूँछते हैं।

तृतीय अंक में राजा अग्निमित्र अपनी छोटी रानी इरावती से मिलने के लिए प्रमदवन में जाते हैं मालविका राजा से मिलने के लिए आगे बढ़ती है उसी समय उद्यान में छिपी इरावती उन्हें रोकती है। रानी धारिणी को जब यह बात पता चलती है कि मालविका का राजा से मिलन करवाने के लिए बहुलावलिका प्रयत्नशील है तो वह दोनों को तहखाने में बंद करवा देती है। विदूषक अपनी कूटनीतिक चाल द्वारा महारानी धारिणी की विष-विनाशक अंगूठी को प्राप्त कर दोनों सखियों (मालविका तथा बहुलावलिका) को तहखाने से मुक्ति दिलाता है।

अन्तिम अंक में यह सूचना प्राप्त होती है कि मालविका का भाई माधवसेन ने यज्ञसेन को परास्त कर दिया है। इसी समय मालविका

के राजकुमारी होने का भेद प्रकट हो जाता है। मालविका विदर्भदेश माधवसेन की बहन और कौशिकी उनके मंत्री की बहन है, इस बात का पता चलते ही रानी धारिणी की अनुमति से अग्निमित्र और मालविका का विवाह सम्पन्न हो जाता है।

इस प्रकार इस सम्पूर्ण नाटक की प्रत्येक परिस्थिति तथा प्रत्येक अवस्था में नाटककार अग्निमित्र की प्रेमसिद्धि के लिए ही प्रयत्न करता हुआ दिखायी देता है तथा अन्त में वह सफल भी होता है। यही इस नाटक का उद्देश्य भी है।

मालविकाग्नि एक ऐतिहासिक नाटक है। चूँकि जब नाटक ऐतिहासिक है तो उनके पात्रों का भी ऐतिहासिक होना नितान्त आवश्यक होता है। पात्रों की ऐतिहासिकता पर दृष्टिपात करते हुए तथा ऐतिहासिक एवं अनैतिहासिक पात्र को बतलाते हुए डॉ. श्याम शर्मा लिखते हैं कि--" नाटक के प्रधान पुरूष पात्र पुष्पमित्र, अग्निमित्र, वसुमित्र वीरसेन, यज्ञसेन माधवसेन ऐतिहासिक हैं। इनमें प्रथम तीन की ऐतिहासिकता सुनिश्चित है। अन्य पात्र भी ऐतिहासिक प्रतीत होते है। बाहुलक की ऐतिहासिकता संदिग्ध है।"22

स्त्री पात्रों की ऐतिहासिकता स्वीकार करते हुए शर्मा जी आगे लिखते है--"स्त्री पात्रों में धारिणी, वसुलक्ष्मी तथा इरावती की ऐतिहासिकता के बारे में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता कौशिकी काल्पनिक प्रतीत होती है किन्तु नाटककार ने सभी पात्रों को जिस विश्वास के साथ ऐतिहासिक वातावरण में ढालकर चित्रित किया है उससे अधिकांश प्रमुख पात्रों की ऐतिहासिकता पर विश्वास होता है।"23

मुद्राराक्षस (विशाखदत्त)

विशाखदत्त द्वारा रचित मुद्राराक्षस का रचनाकाल चाहे जो भी हो लेकिन यह कृति संस्कृत के महान नाटकों में से एक है। संस्कृत नाटकों की परम्परा का परित्याग करने के बावजूद भी विशाखदत्त ने अपनी नाट्यकला के द्वारा इस कृति को इतना सुदृढ़ बना दिया कि इसका नाम महान नाटकों की श्रेणी में लिया जाने लगा। प्रस्तुत नाटक में कुल 7 अंक है। सम्पूर्ण नाटक में प्राचीन ऐतिहासिक एवं राजनीतिक घटना चक्र को चन्द्रगुप्त और चाणक्य के माध्यम से नाटककार व्यक्त करना चहता है कथानक इस प्रकार है-- नन्दवंश के विनाशोपरान्त पाटलिपुत्र में चन्द्रगुप्त मौर्य का आधिपात्य स्थापित हो चुका है। नाटक का केन्द्र नन्दों का भूतपूर्व मंत्री राक्षस है। प्रथम अंक नन्दवंश का नाश करके राक्षस को अपने वश में करने की प्रतिज्ञा लेता है। क्योंकि राक्षस चाणक्य को नष्ट करने की प्रतिज्ञा ली थी। दोनों तरफ से एक दूसरे को परास्त करने के लिए योजनाएं बनने लगती हैं। राक्षस चन्द्रगुप्त और पर्वतेश में मित्रता कराकर पाटलिपुत्र पर आक्रमण करता है। दूसरी तरफ चाणक्य विषकन्या के प्रयोग द्वारा मलयकेतु के पिता की हत्या कराकर प्रचार राक्षस के विरोध में कर देता है। राक्षस की दोनों चाले विफल हो जाती हैं पर्वतेश जो कि राक्षस के कहने पर पाटलिपुत्र पर आक्रमण किया था वह भी चाणक्य का शिकार बन गया। राक्षस अपने परिवार को अपने अभिन्न मित्र चन्दनदास के घर पर छोड़ देता है। चाणक्य को गुप्तचरों के माध्यमसे पता चलता है कि तीन व्यक्ति राक्षस के प्रिय पात्र हैं (जीवसिद्धि, शकटदास (कायस्थ) तथा चन्दनदास) चाणक्य राक्षस के मित्रों में फूट डालकर शकटदास को चारी के अपराध में फाँसी तथा चन्दनदास को कारावास की आज्ञा देता है। चन्द्रगुप्त को

मारने के लिए राक्षस विविध प्रकार के प्रयत्न करता है लेकिन वह असफल रहता है। राक्षस को अपने गुप्तचरों के माध्यम से यह भी पता चलता है कि चन्द्रगुप्त को मारने की समस्त योजनाऐं चाणक्य ने ही नष्ट की हैं।

तीसरे अंक में चाणक्य और चन्द्रगुप्त के बीच एक सुन्दर दृश्य की योजना की गयी हैं राक्षस को धोखा देने के लिए दोनों में कलह दिखाया जाता है। बिना सूचना दिये ही कौमुदी महोत्सव मनाने की तैयारी होती है, चाणक्य को जब पता चलता है तो वह कौमुदीमहोत्सव मनाने की चन्द्रगुप्त की आज्ञा को ठुकरा देता है और चाणक्य अपना मन्त्रीपद छोड़ देता है। चौथे अंक में राक्षस को अपने गुप्तचर के माध्यम से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त और चाणक्य के बीच मतभेद हो गया है। चन्द्रगुप्त ने चाणक्य को मन्त्रिपद से भी हटा दिया गया है। इधर भृगुरायण मलयकेतु को समझाता है कि यदि चाणक्य रास्ते से हट जाय तो राक्षस और चन्द्रगुप्त का संबंध ठीक हो जायगा। मन्त्रिपद से हटने की बात सुनकर मलयकेतु चन्द्रगुप्त और चाणक्य के विच्छेद का समाचार सुनता है तब उसका सन्देह और बढ़ जाता है। राक्षस अधीर होकर उद्घोष करता है--"चन्द्रगुप्त हस्ततलगत है।" राक्षस और मलयकेतु चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करने की योजना बनाते हैं।

पांचवे अंक में चाणक्य अपनी कूटनीति से मलयकेतु को राक्षस से अलग कर देता है। मलयकेतु को यह भी पता चल जाता है कि राक्षस ने ही उसके पिता पर्वतेश्वर को मरवाया था। राक्षस अपनी इस असफलता पर भी पश्चाताप करता है। छठे अंक के प्रारम्भ में मलयकेतु अमात्य राक्षस के शिविर से निकल जाता है। चाणक्य की आज्ञा से दो व्यक्ति चन्दनदास को वध्यभूमि की ओर ले जाते हैं, राक्षस को जब यह समाचार चन्द्रगुप्त के गुप्तचर द्वारा मिलता है तो

वह बहुत दुःखी होता है। अन्तिम अंक में राक्षस चन्दनदास के प्राण को बचाने के लिए स्वयं आत्म-समर्पण करता है। चाणक्य चन्दनदास को इस शर्त पर छोड़ने के लिए तैयार होता है कि वह चन्द्रगुप्त का मन्त्रिपद ग्रहण करे, विवश होकर राक्षस चन्द्रगुप्त का अमात्यपद (मन्त्रिपद) स्वीकारता है। प्रतिज्ञा पूरी होने पर चाणक्य अपनी चोटी बाँधता है। इस प्रकार सम्पूर्ण नाटक तत्कालीन राजनैतिक परिवेश को चित्रित करने वाली एक सफल कृति है।

साहित्य समाज का दर्पण है, साहित्य और समाज दो एक सिक्के के दो पहलू हैं, जैसे सिक्के का एक भाग न होने से सिक्के का कोई मतलब नहीं होता है, उसी प्रकार साहित्य के न होने पर समाज का और समाज के न होने पर साहित्य का कोई अस्तित्व नहीं होता है दोनों का अन्योन्याश्रित संबंध होता है। चूँकि प्रस्तुत कृति एक सामाजिक कृति है और सामाजिकता से युक्त होने के कारण संस्कृत नाट्य साहित्य में मुद्राराक्षस अपना एक विशिष्ट स्थान बनाये हुए है। यह एक सामाजिक नाटक है किन्तु सामाजिकता के साथ-साथ इस नाटक में कूटनीति, राजनीतिक, चोरी, जुआखोरी, वेश्यावृत्ति, आदि का पर्याप्त वर्णन प्राप्त होता है। यह कृति तत्कालीन समाज को रूपायित करने वाली रचना है और यही इस रचना की प्रसिद्धि का कारण भी है। इसकी प्रसिद्धि और सफलता को ध्यान में रखते हुए बलदेव उपाध्याय जी लिखते है कि--''भाषा तथा भावशैली तथा कृतित्व, वस्तु तथा पात्र-चित्रण के समीक्षण के बल पर हम कह सकते हैं कि विशाखदत्त का यह नाटक वास्तव में एक महनीय सफल कृति है। जिसमें कालिदास के समान कोमल भावों की सरलता नहीं है न भवभूति के समान हृदय को रूलाने वाली करूणा का प्रसार है, न भट्टनारायण के समान योद्धाओं का समरांगण में प्राण देने के लिए न्यौता देने वाले

नगाड़े की गड़गड़ाहट है परन्तु जिसमें दो विशाल राजनीतिज्ञों के बुद्धि वैभव के नाना खेलों का विपुल आगार है और मानवता की भव्यमूर्ति को उपस्थित करने वाली नाट्यकला का सुन्दर ओजस्वी रूप है। निःसन्देह मुद्राराक्षस संस्कृत का सफल नाटक होने के अतिरिक्त विश्व साहित्य में अपना उचित स्थान बनाये रखने की योग्यता रखता है।''24

देवीचन्द्रगुप्तम्-(विशाखदत्त):--

प्रस्तुत नाट्य रचना अपने मूल रूप में प्राप्त नहीं है किन्तु 'नाट्यदर्पण' तथा 'श्रृंगार प्रकाश' नामक ग्रंथों में इनके उद्धरण प्राप्त होते हैं।

प्रस्तुत नाटक का नायक रामगुप्त है। एक बार रामगुप्त शकों से इस प्रकार घिर चुका था कि उसके सामने संधि स्वीकार करने के अलावा अन्य कोई रास्ता न था। संधि में रामगुप्त ने अपनी पत्नी ध्रुवदेवी को शक पति तथा अपने सरदारों की पत्नियों को उनके सरदारों के लिए देनी पड़ी। जब यह शर्त ध्रुवदेवी को पता चला तो वे काफी दुःखी हुई। चन्द्रगुप्त ध्रुवदेवी की हालत देखकर वैताल साधना के माध्यम से उसे हर संभव छुड़ाने का प्रयत्न करता है। लेकिन जब विदूषक उससे पूंछता है कि क्या तुम रात्रि के समय बाहर जा सकोगे तब वह निराश हो जाता है और उसका सारा प्रयास विफल हो जाता है। इसी समय माधव सेन की दासी आती है और ध्रुवदेवी के वस्त्राभूषण वहीं छोड़कर स्वंय उसे ढूंढ़ने निकल पड़ती है। उन वस्त्रों को देखकर चन्द्रगुप्त के मन में छद्मवेष का विचार जाग्रत होता है। चन्द्रगुप्त स्त्री वेष में शत्रुशिविर में प्रवेश करके शक का बध कर देता है। इसी के साथ दूसरा और तीसरा अंक समाप्त हो जाता है।

चतुर्थ अंक में माधवसेन के प्रति चन्द्रगुप्त की आशक्ति दिखाई देती है। पाँचवे अंक में उन्मत्त वेष में चन्द्रगुप्त के राजकुल में प्रवेश की सूचना मिलती है। आगे का इतिवृत्त प्राप्त नहीं होता है लेकिन उपर्युक्त उद्धरणों को देखने से ऐसा अंदाजा लगाया जा सकता है कि प्रस्तुत कृति में कम से कम छः या सात अंक रहा होगा। डॉ. राघवन इसके पात्रों की ऐतिहासिकता स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि "प्रस्तुत नाटक में चन्द्रगुप्त तथा ध्रुवदेवी दोनों गुप्त इतिहास के सुप्रसिद्ध पात्र हैं। संभवतः मालविकाग्निमित्रम् की पंडिता कौशिकी जैसी है जो कि रानी के साथ रहती है।"२५

देवीचंद्रगुप्त नाटक की ऐतिहासिकता, अनैतिहासिकता तथा उसके पात्रों के ऐतिहासिकता एवं अनैतिहासिकता तथा समय आदि को लेकर विद्वानों में

काफी मतभेद रहा है। विद्वानों का एक वर्ग जहाँ इसे ऐतिहासिक मानता है वहीं दूसरा वर्ग अनैतिहासिक। डॉ. श्याम शर्मा विभिन्न विद्वानों के मत एवं नवीन खोज के प्रमाण स्वरूप अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं -''रामगुप्त ऐतिहासिक व्यक्ति तथा देवी का कथानक भी। पर जब तक इतिहासकार किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचते, नाटक का ऐतिहासिक समालोचन असंभव है। हमारा तो यह विश्वास है कि नाटक के संपूर्ण रूप में उपलब्ध होने पर ही गुप्त इतिहास से संबंधित और भी अधिक निश्चित जानकारी हो सकेगी।''२६

कौमुदी महौत्सव - (विज्जिका):--

प्रस्तुत नाटक में कुल पाँच अंक हैं। इसके रचयिता का नाम निश्चित नहीं हो पाया है, लेकिन कल्पना के आधार पर नाटक की लेखिका दक्षिणात्य कवयित्री विज्जिका का अनुमान लगाया जाता है।२७ कुछ विद्वान कौमुदी के पद्य के आधार पर इसे किशोरिका द्वारा रचित बताते हैं ----

''कृष्णसारां कटाक्षेणं कृषीवल किशोरिका।
करोत्येषा कराग्रेण कर्णे कमल मज्जरीम्।।''२८

जिस प्रकार शूद्रक रचित मृच्छकटिकम राजनीतिक घटनाओं से युक्त होने के बावजूद भी उसे प्रणय कथा से संबंद्ध किया गया है उसी प्रकार कौमुदी महौत्सव की राजनीतिक घटना को प्रणय कथा से संबद्ध किया गया है।

मगध के राजा सुंदर वर्मा का सेनापति कपटी चंडसेन चुपके-चुपके लिच्छिवियों से संबंध स्थापित करने के बाद उसकी सहायता से पाटलिपुत्र पर आक्रमण कर देता है। सुंदर वर्मा इस युद्ध में मारा जाता है। परिणाम स्वरूप स्वयं चंडसेन मगध का राजा बन बैठता है। सुंदर वर्मा का मंत्री मंत्रगुप्त अपने स्वामी के पुत्र कल्याण वर्मा को पाटलिपुत्र के विंध्य पर्वतों में कुछ दिन के लिए सुरक्षित रखता है तथा उसे राजा बनाने का अवसर ढूंढने लगता है।

राजमंत्री मंत्रगुप्त पाटलिपुत्र आकर राज्य प्राप्त करने की मंत्रणा करने लगता है।

संयोगवश एक दिन पंपासर के निकट कुमार जब चिंतित अवस्था में घूम रहे होते हैं उसी समय वहाँ शूरसेन के राजा कीर्तिसेन की पुत्री कीर्तिमती से मुलाकात होती है और प्रथम मुलाकात में दोनों एक-दूसरे पर अनुरक्त हो जाते हैं। दूसरी तरफ कुमार का मंत्री मंत्रगुप्त चंडसेन के विरूद्ध नागरिकों को भड़काने में सफल हो जाता है और नागरिकों द्वारा विद्रोह कराके चंडसेन को मरवा डालता है। साथ ही साथ कल्याण वर्मा को राजा घोषित कर देता है। कल्याण वर्मा का राज्याभिषेक कार्त्तिकी पूर्णिमा के दिन होता है। इसी अवसर पर "कौमुदीमहौत्सव" नाटक का आयोजन किया जाता है। कीर्तिसेन बड़ी प्रसन्नता से अपनी पुत्री का विवाह कल्याण वर्मा से कर देता है। संभवतः कौमुदीमहोत्सव नाटक के आयोजन के फलस्वरूप इस नाटक का नाम भी कौमुदीमहोत्सव रखा गया हो। पाश्चात्य विद्वान विंटरनिट्स उसी अर्थ में कौमुदीमहोत्सव को ऐतिहासिक कृति मानते हैं जिस अर्थ में मृच्छकटिकम् है।

हम्मीर मर्दन (जयसिंह):--

प्रस्तुत नाटक में कुल पाँच अंक हैं। प्रस्तावना के उपरांत प्रथम अंक के आरंभ में ही वीर धवल तेजपाल के साथ वस्तुपाल की नीतिज्ञता की प्रशंसा करते हुए प्रवेश करता है और बताता है कि जब मैं यदुमहीपाल सिंहड से युद्ध करने के लिए डर रहा था और मालव नरेश ने भी मेरी मदद करने से इन्कार कर दिया था उसी समय लाट देश के राजा श्रीसिंह से मेरी मित्रता हो गयी। जब वीरधवल मालव नरेश के आक्रमण करने के उपक्रम को बताता है तो वस्तुपाल भी अपने गुप्तचरों की सफलता घोषित करता है। हम्मीर के विषय में वीरधवल एवं वस्तुपाल आदि परामर्श करने के बाद भावी संकट की चेतावनी देते हैं और यहीं पर प्रथम अंक समाप्त हो जाता है।

दूसरे अंक में लावण्य सिंह मलेच्छ राज के आक्रमण के समय वस्तुपाल

की कूटिनीति से आ मिले राजाओं के बारे में बताता है। लावण्य सिंह स्कंधावार का समाचार कहता है। शीघ्रक सिंहण के पास पहुँचकर हम्मीर की सेनाओं द्वारा गुर्जर सेना को नष्ट करने का समाचार एवं वीरधवल के विरूद्ध छिड़ने वाले युद्ध की आशंका व्यक्त करता है, दूसरी ओर देवपाल द्वारा लिखे गये पत्र की सूचना जब संग्राम सिंह पढ़ता है तो वह भयभीत हो जाता है, उसी समय वस्तुपाल राजा की वीरता एवं संग्राम सिंह के चरित्र की प्रशंसा करता हुआ प्रवेश करता है, जिससे यह पता चलता है कि संग्राम सिंह भी वस्तुपाल से मित्रता करना चाहता था।

तीसरे अंक में कमलक हम्मीर वीरों द्वारा मारवाड़ के भयंकर नाश का वर्णन करता हुआ कहता है कि मारवाड़ के राजा ने उससे युद्ध नहीं किया और न ही कोई क्षत्रिय प्रजारक्षण के लिए सामने आया। परिणाम स्वरूप निरास प्रजा स्वयं आग में कूदकर या कुँए में गिरकर अपने प्राण देने लगी। लेकिन जब कमलक ने वीर धवल के आने की बात बताई तो सभी शत्रु भाग गये।

चौथे अंक में कुवलयक एवं शीघ्रक नामक दो गुप्तचर वेष बदलकर आते हैं। अंक के अंत में वीरधवल की सेना आक्रमण करती है और गुप्तचर आदि भाग जाते हैं।

पंचम अंक में हम्मीर के पलायन से प्रसन्न वीरधवल देवी जैतल्ल को यह सूचना देता है और उद्यान में वीरधवल रानी से मिलता है। अन्य लोग भी उससे वहीं मिलते हैं। वहाँ पर उपस्थित सभी लोग मदन देवी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं। यहीं पर आशीर्वादरूप में भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

डॉ. श्याम शर्मा नाटक का मुख्य उद्देश्य ऐतिहासिक मानते हैं और अन्य घटनाएँ गौण। इसी पर वे अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं कि-''इनमें किंचित अतिरंजना भले ही हो, किन्तु निराधार घटनाओं के विनियोग की संभावना कम रहती है। मुख्यतः हम्मीर मर्दन में ऐतिहासिक उद्देश्य ही प्रधान रहा है। कल्पना प्रयोग इतिहास की घटनाओं को ऐतिहासिक रूप प्रदान

करने , घटनाओं में क्रमबद्धता लाने, नाट्यरूप में रंग भरने तथा प्रभाव एवं प्रवाह की अभिवृद्धि के लिए ही हुआ है। निरर्गल तथा निरर्थक नहीं। इसी प्रकार यह भी स्पष्ट है कि नाटक में गुप्तचर आदि को छोड़कर समस्त प्रमुख पात्र ऐतिहासिक हैं।''२९ नाटक की घटनाओं को ऐतिहासिक मानते हुए वे आगे लिखते हैं -''हम्मीर मर्दन नाटक की घटनाएँ प्रायः ऐतिहासिक हैं। इसमें गुजरात के चालुक्यों के समकालीन इतिवृत्त को आधिकारिक कथा के रूप में उपजीव्य बनाया है। गुजरात के इतिहास में भीम द्वितीय एक सुप्रसिद्ध राजा है।''३०

''हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों का संक्षिप्त परिचय''

हिन्दी में नाटक लिखने की शुरूआत आचार्य भरतमुनि से हुई मानी जाती है इस तथ्य को सभी नाट्याचार्यों ने खुले मन से स्वीकार किया है। इसका विस्तृत विवेचन हम प्रथम अध्याय में कर चुके हैं। अतएव यहाँ पर मात्र हिन्दी के कुछ ऐतिहासिक नाटकों की चर्चा करूँगा और किंचित विस्तार उन्हीं ऐतिहासिक नाटकों का करूँगा जिन्हें हमें संस्कृत नाटकों के साथ तुलनात्मक नजरिये से रखना है।

हिन्दी में ऐतिहासिक नाटक की जब भी चर्चा की जाती है तो 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध, अर्थात भारतेन्दु युग से इसका प्रारम्भ होता है भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की पहली नाट्य रचना जो कि मूलतः गीति नाट्य एकांकी है जिसका नाम है- 'नील देवी'। तत्पश्चात् रत्नावली नाटक को डॉ. नवरत्न कपूर ने हिन्दी का प्रथम ऐतिहासिक नाटक माना है।31 इस प्रकार इन प्रारम्भिक कृतियों के पश्चात् हिन्दी में ऐतिहासिक नाटकों की एक परम्परा चल पड़ी। सन 1882 से शुरू होकर यह परम्परा निरन्तर अविरल गति से चली आ रही है। राधाकृष्ण दास ने सन् 1882 में पद्मावती, तथा सन् 1897 में महाराणा प्रताप-शीर्षक से दो नाटकों की रचना करके इस परम्परा को बरकरार रखा । इस परम्परा को सुदढ़ बनाने वाले ऐतिहासिक नाटककारों में काशीनाथ खत्री, श्रीनिवास दास, और बैकुंठनाथ आदि प्रमुख हैं । बैकुंठनाथ राय का श्री हर्ष, श्रीनिवास दास का संयोगिता स्वयंवर और राधाचरण गोस्वामी का अमरसिंह राठौर नामक ऐतिहासिक नाटक प्रसिद्ध है । इसके साथ ही साथ कुछ अन्य ऐतिहासिक नाट्य कृतियों का भी जहाँ तहाँ उल्लेख मिलता है, 32 जैसे 'वीरवामा'-वैजनाथ, सती चन्द्रावली- राधाचरण गोस्वामी, मीराबाई-बलदेव

प्रसाद मिश्र , सिंहलविजय-रामनरेश शर्मा, न्याय सभा रामसेवक वकील, हठी-हमीरं-प्रतापनारायण मिश्र, चन्द्रसेन-बालकृष्ण भट्ट आदि।

हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों के लेखन का दौर उस समय का है जब हमारा देश गुलामी की जंजीरों से जकड़ा हुआ था। हमारे देश के जनमानस को आवश्यकता थी ढांढ़स बँधाने की, उन्हें प्रोत्साहन देने की। उनमें शक्ति एंव साहस होने के बावजूद उसका वे इस्तेमाल नहीं कर पा रहे थे। हमारे तत्कालीन नाटककारों ने इतिहास के उन तमाम महारथियों को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत करते हुए अर्थात अपने नाटक में नायक के रूप में प्रस्तुत करते हुए नाट्य रचनाएं प्रस्तुत की जिनकों पढ़ने, देखने तथा सुनने मात्र से लोगों में जोश पैदा होता था । मातृभूमि के प्रति देशभक्ति जागृत होती थी, इसी आकांक्षा और उपेक्षा के साथ महाराजा प्रताप, मीराबाई, पृथ्वीराज, महारानी, पद्मावती तथा अमरसिंह राठौर जैसे ऐतिहासिक पात्रों को नाटककारों ने अपनी रचना का विषय वस्तु बनाया।

ऐतिहासिक नाटकों में-1857 की दिल्ली, पीरअली, आजमाइश, कुँवरसिंह की टेक तथा तात्याँटोपे आदि नाटकों पर सन 1857 की क्रान्ति की असफलता के कारणों को लेकर, प्रकाश डाला गया है। भगवान बुद्ध के प्रथम शिष्य या उपदेशक अशोक पर आधारित 'धर्मराज' नामक नाटक सन् 1856 में लिखा गया जिसके नाटककार आचार्य चतुरसेन थे। तत्पश्चात् कुछ जीवनी परक ऐतिहासिक नाटक लिखे गये जैसे-भगवान बुद्ध, अशोक, विक्रमादित्य, शंकराचार्य, रहीम, शिवाजी, हम्मीरदेव, सिराजुद्दौला, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा महात्मा गाँधी। भगवान बुद्ध की जीवनी को आधारभूत बनाकर सन् 1855 में चार अंकों का 'सिद्धार्थ बुद्ध'33 'भिक्षु से गृहस्थ और गृहस्थ से भिक्षु' नामक नाटक सेठ गोविन्ददास द्वारा लिखा गया।

1.हिन्दी नाट्य साहित्य में ऐतिहासिक नाटकों की परम्परा 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से प्रारम्भ हुई इसके पहले यदि हम दृष्टिपात करते हैं तो लोकनाट्य के रूप में यह परम्परा हमें दिखायी देती है। चाहे वे 'रास' पर आधारित हो या किसी धार्मिक कथा पर,
किन्तु पूर्णरूपेण हिन्दी के विशुद्ध ऐतिहासिक नाटक की सबने चर्चा की है । लेकिन भारतेन्दु से ही ऐतिहासिक नाटक का प्रारंभ माना जाता है। तब से लेकर आज तक अपने-अपने ऐतिहासिक दृष्टिकोण को लेकर नाट्य शास्त्रियों ने नाटक लिखें है। इस प्रकार हिन्दी में ऐतिहासिक नाटक की एक लम्बी सूची दिखायी पड़ती है। डॉ धनंजय 34 ने 'हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास तत्व' नामक पुस्तक में 174 हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों का उल्लेख किया है। इसके साथ ही साथ उन्होंने हिन्दी के विशुद्ध ऐतिहासिक नाटको की चर्चा करते हुए मात्र 5 ऐतिहासिक नाटकों का उल्लेख किया है। जिनमें अजात शत्रु , ध्रुवस्वामिनी, स्कन्द गुप्त, राज्यश्री, चन्द्रगुप्त , तथा वितस्ता की लहरें ।

हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों की सूची के सन्दर्भ में विभिन्न विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत मिलते हैं किसी ने 174 , किसी ने 10, किसी ने 25 कहा है किन्तु मेरा उद्देश्य इन विवादी मुद्दों को सुलझाना नहीं है। यहाँ पर हमें उन ऐतिहासिक नाटकों की संक्षिप्त चर्चा-विचारणा करनी है। जिन ऐतिहासिक नाटकों को समीक्षा के लिए चुना है वे इस प्रकार हैं----

⇨ नीलदेवी- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
⇨ अजात शत्रु -जयशंकर प्रसाद
⇨ ध्रुवस्वामिनी- जयशंकर प्रसाद
⇨ स्कन्दगुप्त- जयशंकर प्रसाद

- ⇨ राज्यश्री- जयशंकर प्रसाद
- ⇨ चन्द्रगुप्त मौर्य-जयशंकर प्रसाद
- ⇨ शिवा-साधना--हरिकृष्ण प्रेमी
- ⇨ वितस्ता की लहरें--लक्ष्मी नारायण मिश्र
- ⇨ शक विजय--उदय शंकर भट्ट।

नीलदेवी (भारतेन्दु)

हिन्दी नाट्य साहित्य के ऐतिहासिक नाटकों की जब भी चर्चा की जाती है तो भारतेन्दु के नाटक 'नीलदेवी' का सर्वप्रथम उल्लेख किया जाता है। इनका यह नाटक गीतिरूपक है। इस नाटक को लेकर विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किये हैं यहाँ तक कि इसकी ऐतिहासिकता पर भी प्रश्न चिन्ह लगाया है। यह नाटक गुलाम भारत के वीर नारी को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। इस नाटक की शुरूआत ही दुर्गा पाठ के मंत्र के साथ होती है, वेसे भी नारी जब अपना विकट रूप धारण करती है तब उसे दुर्गा की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। हमारे देश की सामाजिक संरचना के अनुसार राजाओं, महाराजाओं या पुरुषों की मृत्यु के पश्चात नारी को सती हो जाने की कुप्रथा प्रचलित थी । भारतेन्दु ने इसका विरोध अपने नाटकों में भी किया ।युद्ध के मैदान में राजाओं की मृत्यु के पश्चात् रानियों को जला देने के बाद राज्य पर आक्रमण कारियों का आसानी से वर्चस्व हो जाता था । तत्कालीन रानियॉ राजाओं से कम कुशल नहीं होती थी, इसलिए भारतेन्दु ने उन्हें जलकर मर जाने के बजाय दुश्मनों का मुकाबला करने के अधिक बेहतर समझा । इस नाटक में भारतीय नारी

की वीरता और उसके कर्म के आदर्श को प्रस्तुत किया गया है।

'नीलदेवी' नाटक की भूमिका में भारतेन्दु जी ने स्वयं लिखा है कि--''इससे यह किसी को शंका न हो कि मैं स्वप्न में भी यह इच्छा करता हूँ कि इन गौरांगी स्त्री समूह की भाँति हमारी कुललक्ष्मीगण भी लज्जा को तिलांजलि देकर अपने पति के साथ घूमें किन्तु और बातों में जिस भाँति अंग्रेजी स्त्रियां सावधान होती है, पढ़ी लिखी होती हैं, घर का काम-काज संभालती है, अपने संतान गण को शिक्षा देती है, अपना स्वत्व पहचानती है, अपनी जाति और अपने देश की सम्पत्ति विपत्ति को समझती है उसमें सहायता देती हैं और इतने समुन्नत मनुष्य जीवन को व्यर्थ गृहदास्य और कलह में ही नहीं खोती, उसी भाँति हमारे गृह देवता भी वर्तमान हीनावस्था को उल्लंघन करके कुछ उन्नति प्राप्त करें यही लालसा है।''35

इस नाटक में भारतेन्दु का स्वर देशभक्ति परक रहा है। और दूसरा भारतीय नारी को इतना सबल वना देना कि वे अपनी समस्याओं का सामना स्वयं कर सके। इसीलिए तो अपने इस उद्देश्य को ग्रन्थ समर्पण करते समय छिपा नहीं पाते-- ''जिस भांति अंग्रेज स्त्रियाँ सावधान होती है, पढ़ी लिखी होती हैं, घर का काम-काज संभालती हैं, अपने सन्तानगण को शिक्षा देती है अपना स्वत्व पहचानती है, अपनी जाति और अपने देश की संपत्ति विपत्ति को समझती हैं, उसमें सहायता देती हैं उसी भाँति हमारी गृह देवियां भी वर्तमान हीनावस्था का उल्लंघन करके कुछ उन्नति प्राप्त करें यही लालसा है। इस उन्नति पथ का अवरोध हम लोगों की वर्तमान कुल-परम्परा मात्र है और कुछ नहीं।36

भारतेन्दु के इस कथन से उनका उद्देश्य और नारी जाति के कर्तव्य का पता चलता है तथा पूरे नारी समुदाय को इससे प्रेरणा भी मिलती है,

किन्तु उनके इस विचार को कुछ विद्वतगण यह कह कर नकार देते हैं कि इससे भारतीय समाज का हित नहीं बल्कि अहित होगा क्योंकि इससे नारी जगत में प्रतिहिंसा की भावना पैदा होती है। भारतेन्दु ने युगीन आवश्यकता के अनुसार नारी वीरता को प्रकट करना और उसे प्रेरित करना नीतान्त आवश्यक समझा, इसीलिए उन्होंने पंजाब के राजा सूर्यदेव तथा उमीर अब्दुलसरीफ खाँ के युद्ध को अपने नाटक की विषय वस्तु बनाया है। यह नाटक कुछ इस प्रकार है रात्रि के समय में अमीर खाँ अपने सैनिकों के साथ अचानक आक्रमण करके राजा सूर्यदेव को बन्दी बना लेता है। वह राजा से धर्म-परिवर्तन करने का आग्रह करता है अमीर के इस आग्रह पर पिंजड़े में बन्द राजा सूर्यदेव मुस्लिम सैनिकों पर थूक कर कहता है- "तुझ पर थू और तेरे मत पर थू"।37 राजा सूर्यदेव को मारने के लिए जब सैनिक अस्त्र लेकर दौड़ते हैं तब वह पिंजड़े के छड़ को तोड़कर बाहर निकल आता है और अकेले अनेकों यवनों का संहार करते हुए वीरगति को प्राप्त होता है। राजा की मृत्यु के पश्चात् हताश एवं निराश राजपूताना सैनिक युद्ध छोड़कर चले जाते हैं। राजा की मृत्यु और युद्ध के मैदान से वापस आयी हुई सेना को देखकर रानी के सामने देश की मुक्ति का कोई रास्ता नहीं दिखायी देता तब वह अपने पति की मृत्यु का बदला लेने के लिए एक नर्तकी का वेश-धारण करके अमीर खाँ के दरबार में जाती है। वहाँ पर मौका पाते ही सिंहनी की भाँति अमीर की छाती पर चढ़कर अपनी कृपाण से उसका कलेजा फाड़ देती है और इस प्रकार राजपूतों की जीत और अमीर खाँ की हार होती है। अंत में रानी राजा की चिता पर वैठकर जलकर अपने प्राण दे देती है। इस प्रकार भारतेन्दु ऐसी महान वीर, निडर, प्रतिभाशाली तथा नीति-निपुण नारियों की न सिर्फ प्रशंसा करते है बल्कि भारतवर्ष की तमाम नारियों

को नीलदेवी बनने के लिए प्रेरित करते हैं।

इस ऐतिहासिक नाटक पर तरह-तरह के आरोप लगाये जाते हैं कभी इसकी कथावस्तु को लेकर कभी ऐतिहासिकता को लेकर। इसी तरह के आरोपण-प्रत्यारोपण की चर्चा करते हुए डॉ. धनंजय ने लिखा है कि--''यदि नूर पर और नांगल जैसें स्थानिक स्थानों से इसके कथानक को संबंधित न किया गया होता ऐतिहासिक नाटक की कोटि में इसे रखना संभव न होता। एडविन आरनाल्ड ने 'इंडियन पोयट्र ी' शीर्षक ग्रंथ में 'दि राजपूत वाइफ' नामक एक कविता दी है, इसी कविता का आधार भारतेन्दु ने 'नीलदेवी' नाटक में लिया है। स्वयं आरनाल्ड ने इस कविता के ऐतिहासिकता के आधार का कोई संकेत नहीं दिया है। भारतेन्दु ने कथानक प्राय: वही लिया है पात्रों में कुछ उलट फेर अवश्य की है। आरनाल्ड की कविता की रानी नीला को बदलकर नीलदेवी के रूप में रखा गया है। तथा सोमदेव, विष्णुशर्मा, चपरगट्टू आदि को अपनी ओर से जोड़ा है और वे सभी नाटक में पूर्णता लाने का प्रयास करते हैं। राजासूर्यदेव, रानी नीला आदि चरित्रों का अस्तित्व इतिहास में नहीं है। संभवत: किसी जनश्रुति के आधार पर इन्हें रखा गया है यद्यपि यह भी अनुमान मात्र ही है।''38

इस प्रकार भारतेन्दु का 'नीलदेवी' नाटक कुल मिलाकर ऐतिहासिक नाटकों के दौर का पहला नाटक है इसलिए थोड़ी-बहुत कमियों का नजरअंदाज करते हुए इसे ऐतिहासिक नाटक के रूप में स्वीकार किया जाता है और एक उत्कृष्ट नाटक माना जाता है।

अजातशत्रु (जयशंकर प्रसाद-1922 ई0)

हिन्दी नाट्य साहित्य के सम्राट जयशंकर प्रसाद का नाटक 'अज्ञातशत्रु' आन्तरिक और वाह्य संघर्षो पर आधारित हिन्दी नाट्य साहित्य का पहला नाटक है। नाटककार का स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण इस नाटक में निखर कर सामने आया है। सन् 1922 में पहलीबार यह नाटक प्रकाशित हुआ। इसके अन्तर्गत प्रसाद जी ने भगवान बुद्ध के समय के (567 ई0 पू0) भारत के उत्तराखण्ड में बसे मगध, कोसल, वत्स तथा अवन्ती की कथाओं कों अपनी सशक्त लेखनी से एक सूत्र में पिरोया है। प्रसाद के इस नाटक की कथावस्तु बहुत ही सुसंगठित है, इसमें कहीं न तो कोई बिखराव है और न ही फैलाव। यह नाटक तीन अंकों में ही समाप्त हो जाता है, जिसमें से दो अंकों में संघर्ष चलता है और वही संघर्ष तीसरे अंक में जाकर परिणाम तक पहुँचता है।

नाटक का कथानक पारस्परिक गृह-कलह से प्रारम्भ होता है इसके पहले अंक में मगध, कोसल और कौशाम्वी के राज-परिवारों से जुड़ी घटनाएं है। मगध के राजा की दो रानियों वासवी और छलना है। वासवी कोसल नरेश प्रसेनजित की बहन है और लिच्छिवि-कुमारी छलना अजात शत्रु की माँ है। अजातशत्रु माँ की प्रेरणा और प्रोत्साहन से राज्य के अधिकार को प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध है, उधर मगध सम्राट विम्बसार भगवान बुद्ध के उपदेश से प्रभीवित होकर गृहकलह से अपने आप को मुक्त करने के लिए राजकुमार अजात शत्रु को राजा बना देता है। देवब्रत और राजमाता छलना की सहायता और प्रेरणा से राज्य का कारोबार व्यवस्थित रूप से चलने लगता है। राजा की बड़ी रानी वासवी काशी के राजस्व को अपने अधीन करना चाहती है और इस तरह से राज-परिवार में कलह की अग्नि कोसलपुर तक पहुँच जाती है।

राजकुमार विरूद्धक अजातशत्रु की ही तरह कोशलपुर की राज्यसत्ता प्राप्त करना चाहता है किन्तु उसके पिता प्रसेनजित उसे राज्य से निकाल देते हैं अपमानित और निर्वासित विरूद्धक अपनी ताकत और क्षमता से राज्याधिकार प्राप्त करने के लिए प्रयासरत हो जाता है। अपनी माता की प्रेरणा से विरूद्धक प्रतिशोध के लिए कटिबद्ध हो जाता है। उधर कौशाम्बी में पद्मावती के विरूद्ध षडयंत्र रचा जाता है। मागन्धी के कारण पद्मावती को उपेक्षित होना पड़ता है। इसी अंक के अंत तक आते-आते मागधी के षडयंत्र का पर्दाफाश हो जाता है और उदयन पद्मावती से क्षमा याचना करता है, पद्मावती को पुनः प्रतिष्ठा मिल जाती है।

इस नाटक के दूसरे अंक में संघर्ष की सीमा बढ़ जाती है विरूद्धक अजात शत्रु के सहयोग हेतु उसे निमन्त्रण प्रेषित करता है, अजातशत्रु की परिषद इस निमन्त्रण को स्वीकार करते हुए कोसल से युद्ध करने की स्वीकृति देती है। राजकुल की सुरक्षा के लिए वासवी तथा बिम्बसार पर कड़ा पहरा लगा दिया जाता है। काशी की प्रसिद्ध वार-विलासिनी श्याम जो मागन्धी के नाम से जानी जाती है के सम्पर्क मे आता है। वह कोसल के सेनापति बन्धुल की हत्या कर देता है श्यामा 'विरूद्धक' को किसी तरह बन्दीगृह से मुक्त कराती है। अजात शत्रु बन्धुल की हत्या से अपना उल्लू सीधा करता है और काशी को अपने अधीन कर लेता है। इसी अंक में बन्धुल की पत्नी मल्लिका घायल कोसल नरेश की सेवा करती है जबकि वह यह अच्छी तरह जानती है कि उसके पति की हत्या इन्होंने ही की है। इसी अंक में जिस श्यामा ने विरूद्धक को बंदी गृह से छुड़ाया था और उस पर पूर्ण विश्वास करती थी गला घोंट कर उसकी

हत्या कर देता है। तथा सारे आभूषण लेकर भाग जाता है। अंत में मगध और कोसल के राजकुमार एक साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो जाते है तथा दूसरी ओर कौशाम्बी की सेना युद्ध के मैदान में पहुँच जाती है।

अजात शत्रु नाटक के तीसरे और अंतिम अंक में सभी संघर्षो का निष्कर्ष सामने आ जाता है। वासवी अजातशत्रु को कोसल जाकर मुक्त कराती है जब अजातशत्रु बन्दी हो जाता है तब छलना को अपनी मातृत्य की गरिमा का पता चलता है बंदी गृह में ही कोसल की राजकुमारी बाजिरा अजातशत्रु पर मोहित हो जाती है। बड़ी रानी वासवी की मदद से अजात शत्रु मुक्त होता है और बाजिरा से उसकी शादी हो जाती है। उधर राजकुमार विरूद्धक मल्लिका (बन्धुल की पत्नी) की सेवा से पूरी तरह ठीक हो जाता है और श्यामा मल्लिका की कुटी पर अचानक पहुँच जाती है वह विरूद्धक के घृणित कार्यो को मल्लिका से बताती है तब मल्लिका उसे समझाती है विरूद्धक श्यामा से क्षमा मांगता है। मल्लिका के प्रयास से ही विरूद्धक को अपना पूर्व गौरव मिलता है और मागन्धी को आम्रपाली के रूप में संघ का आश्रय प्राप्त होता है इस प्रकार तीसरे अंक की समाप्ति मगध में ही होती है। सन्तानोत्पत्ति के पश्चात् अजातशत्रु को पिता के स्नेह के गौरव का पता चलता है और छलना अपने आधार को स्वीकार करती है और महाराज बिम्बसार से क्षमा याचना की भीख माँगती है। ऐसे समय में गौतम का प्रवेश होता है और नाटक समाप्त होता है।

अजातशत्रु की कथावस्तु पूर्णरूपेण ऐतिहासिक है । साथ ही साथ तत्कालीन राजनैतिक धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों को अपने में समेटे हुए है इस सन्दर्भ पर प्रकाश डालते हुए डॉ भगवती प्रसाद शुक्ल लिखते हैं कि ''अजात शत्रु के वस्तु-विन्यास की सबसे बड़ी विशेषता

यह है कि बुद्ध के जीवन काल की समस्त राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परम्पराओं को समेट लिया गया है तथा अनेक घटनाओं को एक सूत्र में निबद्ध करने का प्रयास किया गया है। अतः इस नाटक की कथा-वस्तु अत्यधिक महत्वाकांक्षापूर्ण है और इसमें ऐतिहासिकता की रक्षा की गयी है।''39

इस नाटक की मुख्यकथा तो मगध राज्य की है शेष दानों राज्यों की कथाएं तथा उनकी घटनाएं इससे जुड़ी हुई हैं प्रसाद नें इन कथाओं को एक साथ संयोजित करके एक सूत्र में बाँधकर एकता की ताकत को बताना चाहते हैं क्योंकि हम प्रसाद के समय को जब देखते हैं तो पाते हैं कि हमारा भारत गुलाम है और हम पारस्परिक मतभेदों के कारण आपस में ही लड़ रहे हैं। प्रसाद ने अपने इस नाटक में ऐतिहासिक कथावस्तु के द्वारा हम भारतवासियों को कहीं न कहीं एक सूत्र में बँधने का संदेश दिया है। क्योंकि उस समय भी मल्लिका और बाजिरा जैसे लोग भी थे और पारस्परिक मतभेद को दूर कराके एकता स्थापित करने के लिए मागन्धी की तरह प्रयास रत थे। उस समय ऐसे ही लोगों की आवश्यकता थी जो पारस्परिक मतभेद को दूर करके स्वस्थ देश व राज्य का निर्माण कर सके या इस उद्देश्य की पूर्ति में सहभागी बन सके। अजातशत्रु नाटक प्रसाद के इन्हीं विचारों तथा उद्देश्यों को हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है।

राज्यश्री (जयशंकर प्रसाद-1914 ई0)

'राज्यश्री' नाटक प्रसाद द्वारा लिखित सर्वप्रथम ऐतिहासिक नाटक है। यह नाटक सन 1915 में सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ। नाटककार की पहली नाट्यकृति होने के नाते यह नाट्य तत्वों पर भले ही खरा न उतरता हो

किन्तु नाट्य रचना का एक सफल प्रयास नाट्य रचना का अवश्य कहा जायेगा। यह भी सही है कि ऐतिहासिक रचना के उचित स्तर का इसमें सही प्रयोग नहीं हो पाया है किन्तु कथावस्तु ऐतिहासिक है। इस नाटक की कथावस्तु वर्धन साम्राज्य से संबंधित है। राज्यश्री पर देवगुप्त मुग्ध हो जाता है और उसे येनकेन प्रकारेण प्राप्त करना चाहता है। राज्य श्री को प्राप्त करने के लिए वह (देवगुप्त) कान्यकुब्ज पर धावा बोलने के लिए सैन्य बल को तैयार करता है, देवगुप्त के आक्रमण के दौरान गृहवर्मा मारा जाता है इतना ही नहीं राज्यश्री को बन्दी बना लिया जाता है। इसकी खबर जब राज्यवर्धन तक पहुँचती है तो उसके द्वारा देवगुप्त को मृत्यु के घाट उतार दिया जाता है। उधर राज्यश्री कारागार से निकल जाती है और इधर-उधर जंगलों में भटकने लगती है। अपनी जिंदगी से त्रस्त होकर या जीने की आकांक्षा के समाप्त हो जाने के कारण वह आत्मदाह करने की योजना बनाती है किन्तु जब वह आत्मदाह करने का प्रयास करती है उसी बीच वहाँ पर हर्षवर्धन आ जाता है, और वह उसे बचा लेता है।

नाटक के अंत में विकट घोष, सुरमा तथा अन्य सहयोगियों के साथ कान्यकुब्ज में आयोजित दान महोत्सव में भाग लेता है इसी महोत्सव में राज्यश्री अपना सारा धन, सम्पत्ति दान कर देती है। राज्य श्री के निवेदन पर हर्ष नरेन्द्र गुप्त को माफ करता है नाटक के अंतिम दृश्य में बुद्ध की प्रतिमा दिखायी गयी है उस प्रतिमा के सामने सम्राट हर्ष अपने प्रमुख सामन्तों और चीनी यात्री सुयेनच्वांग के साथ खड़ा दिखायी देता है। अपना सब कुछ दान कर देने के पश्चात् वह राज्य श्री से पहनने के लिए एक वस्त्र की मांग करता है क्योंकि राज्यश्री भी अपना सब कुछ दान कर चुकी है इसलिए वह ह्वेच्वांग से वस्त्र लेकर स्वयं भी धारण करती है। इतना ही नहीं राज्य वर्धन की हत्या करने वाले

विकट घोष को भी वह क्षमा कर देती है विकट घोष तथा सुरमा ये दोनों भी सन्यास ले लेते है सभी लोगों के निवेदन करने पर धर्म की रक्षा करने के लिए हर्ष राजमुकुट तथा दण्ड ग्रहण कर लेता है नाटक यहाँ पर पूर्ण हो जाता है।

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है कि 'राज्यश्री' नाटक की ऐतिहासिकता पर कोई प्रश्न चिन्ह नहीं लगाया जा सकता किन्तु उसके प्रस्तुति करण, घटनाक्रम के संयोजन को लेकर तमाम प्रश्न खड़े किये जा सकते हैं ऐसा ही प्रश्न डॉ. धनंजय करते हुए कहते हैं कि-- ''प्रसाद ने इस नाटक में ऐतिहासिक घटनाओं को लिया तो है पर जिस वातावरण में घटनाएं और चरित्र रखे गये है वह ऐतिहासिक नहीं हैं। नाटकीय आस्वाद में इससे बाधा पड़ती है घटनाओं के पीछे की पृष्ठभूमि व्यंजित नहीं हुई है सामयिकता की चेतना ऐतिहासिकता को दबा देती है।''40

कभी-कभी तो कुछ विद्वान इसकी ऐतिहासिकता को लेकर (दुविधापूर्ण) द्वन्द्वात्मक बातें करते है कहीं-कहीं पर वे इसकी ऐतिहासिकता को असंदिग्ध बताते हैं तो कहीं पर इस नाटक की सभी घटनाओं को इतिहास सम्मत मानते हैं। डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल का ऐसा ही एक उद्धरण दृष्टव्य है- ''कथानक की ऐतिहासिकता असंदिग्ध है। पहली बार इस नाटक में प्रसाद ने ऐतिहासिक कथा को विशाल पट पर रखकर नाटकीय रूप दिया 'राजश्री' नाटक की सभी घटनाएं इतिहास सम्मत हैं। इनका आधार बाणभट्ट का हर्षचरित, चीनी यात्री ह्वेनसांग द्वारा लिखित यात्रा वृतान्त और 'हुइली' द्वारा लिखे गये ह्वेनसांग के जीवन चरित्र हैं इसमें विकट घोष और शर्मा दोनों कल्पित पात्र हैं।''41

इस प्रकार राज्यश्री नाटक भले ही अपने नाटकीय तत्व का पूरी तरह से पालन न करता हो तथा इसकी घटनाएं भले ही अव्यवस्थित कम में दिखायी देती हों, डॉ. धनंजय के अनुसार भले ही हर्षवर्धन भी अति नाटकीयता से ग्रस्त हो और वह संपूर्ण नाटक के संयोजन को भले ही बिखरा देता हो किन्तु इसकी कथा वस्तु पूर्ण रूपेण ऐतिहासिक है, पात्र भी ऐतिहासिक है। नाटककार को यह छूट होती है कि वह आवश्यकतानुसार काल्पनिक पात्रों को गढ़ सकते हैं संभवतः प्रसाद ने सुरमा और विकटघोष को अपनी कल्पना और आवश्यकता के कारण गढ़ा है। यह एक सफल ऐतिहासिक एवं उत्कृष्ट नाट्य कृति है इसमें कोई दो राय नहीं है।

ध्रुवस्वामिनी (जयशंकर प्रसाद)

'ध्रुवस्वामिनी' प्रसाद का सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक है। प्रसाद ने इस नाटक की संपूर्ण कथावस्तु को 3 अंकों में समेटा है। इसकी कथावस्तु का मूल आधार विखाखदत्त कृत 'देवीचन्द्रगुप्तम' नाटक है। इसके नामकरण को लेकर जयशंकर प्रसाद जी ने स्वयं लिखा है कि--''विशाखदत्त ने अपने नाटक का नाम 'ध्रुवदेवी' रखा लेकिन मैंनें अपनी नाट्य रचना का नाम 'ध्रुवस्वामिनी' रखा है। उन्हीं के शब्दों में--''विशाखदत्त ने ध्रुवदेवी नाम लिखा है, किन्तु मुझे ध्रुवस्वामिनी नाम जो राजशेखर के मुक्तक में आया है, स्त्रीजनोचित, सुन्दर-आदर-सूचक और सार्थक प्रतीत हुआ है इसीलिए मैनें उसी का व्यवहार किया है।''42

प्रसाद का यह नाटक आकार की दृष्टि से बहुत ही छोटा है। इसमें न तो घटनाओं की अधिकता है और न ही पात्रों की इसलिए इसका कथा संयोजन सीधा सरल और सपाट है। सम्राट समुद्रगुप्त ने

चन्द्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी बनाया लेकिन मंत्री शिखास्वामी ने राजनीति के सिद्धान्त को आधार बनाकर रामगुप्त को सिंहासन पर विराजमान करा दिया। रामगुप्त के व्यवहार से समुद्रगुप्त अप्रसन्न ही रहता है क्योंकि वह आलसी, अकर्मण्य तथा विलासी प्रवृत्ति का है। रात-दिन मदिरा में डूबा रहना, भोग-विलास से लिप्त रहना उसकी प्रकृति बन गयी थी। रामगुप्त को चन्द्रगुप्त से डर है इसलिए वह उसे बन्दी के समान रखता है। इतना ही नहीं रामगुप्त अपनी महादेवी ध्रुवस्वामिनी को भी बंदी की तरह ही रखता है। रामगुप्त को हमेशा यह डर बना रहता है कि ध्रुवस्वामिनी का चंद्रगुप्त के प्रति अनुराग है इसलिए शायद वह मुझे कहीं हानि न पहुँचाए । इस प्रकार अन्दर ही अन्दर असन्तोष की आग उसके मन में भड़क रही थी कि हूणों का आक्रमण हो जाता है और वह चारों ओर से घिर जाता है। शकों (हूणों) की ओर से समाधान का प्रस्ताव आता है जिसमें ध्रुवस्वामिनी की माँग की जाती है रामगुप्त उसे स्वीकार कर लेता है। उसी बीच ध्रुवस्वामिनी राज के पास जाती है और अपनी सुरक्षा की माँग करती है लेकिन शिखर स्वामी मंत्री होने के नाते राजनैतिक दृष्टि से ध्रुवस्वामिनी को शकराज के पास जाने में राज्य की भलाई समझता है। इस प्रकार की सलाह से ध्रुवस्वामिनी बहुत दुःखी होती है उसके अन्तर्मन को गहरी चोट पहुँचती है उसकी सभी प्रार्थना और प्रयास जब असफल हो जाते हैं तब वह अन्त में विवश होकर आत्म हत्या करने के लिए कदम बढ़ाती है। ऐसे दर्दनाक, भीषण समय के दौरान चन्द्रगुप्त का आगमन होता है और उसकी प्रतिज्ञा ध्रुवस्वामिनी की प्राणरक्षा करती है। वह प्रतिज्ञा करता है कि मेरे जीते जी आर्य समुद्रगुप्त का गर्व और स्वाभिमान कभी पद-दलित नहीं होगा। इसलिए चन्द्रगुप्त स्वयं ध्रुव स्वामिनी बनकर शक राज्य के शिविर में जाने के लिए तैयार हो जाता

है। उधर शिखर स्वामी रामगुप्त को सलाह देते हैं-"राजाधिराज आज्ञा दीजिए। यही एक उपाय है जिसे कुमार बता रहें हैं किन्तु राजनीति की दृष्टि से महादेवी का भी वहाँ जाना आवश्यक है।"43 इस प्रस्ताव के लिए चन्द्रगुप्त तैयार नहीं होता वह कहता है कि-"(क्रोध से) क्यों आवश्यक है? यदि उन्हें जाना ही पड़ा तो मेरे जाने से क्या लाभ? तब मैं न जाऊंगा।"44 ध्रुवस्वामिनी चन्द्रगुप्त को शिखर स्वामी और रामगुप्त के साजिश के बारे में बताते हुए कहती है--"कुमार राजा की इच्छा क्या है, यह जानते हो? मुझसे और तुमसे एक साथ ही छुटकारा! तो फिर वही क्यों न हो? हम दोनों ही चलेंगे।"45 और यहाँ पर प्रथम अंक की समाप्ति होती है।

ध्रुवस्वामिनी का दूसरा अंक शक शिविर से शुरू होता है वहाँ पर शकराज को ध्रुवस्वामिनी के आने का समाचार मिल जाता है जिसे सुनकर वह अत्यधिक प्रसन्न होता है। शकराज की प्रेमिका कोमा उससे कहती है-"राजनीति का प्रतिशोध क्या एक नारी को कुचले बिना पूरा नहीं हो सकता?"46 शकराज के आचार्य मिहिरदेव जी भी उससे कहते हैं--"स्त्री का सम्मान नष्ट करके तुम जो भयानक अपराध करोगे उसका फल क्या अच्छा होगा?"47 किन्तु आक्रमणकारी शक इन सबकी बातों को अनसुनी कर देता है उधर चन्द्रगुप्त स्त्री का वेश धारण करके आता है तथा उसके पीछे ध्रुवस्वामिनी भी आती है। दोनों को देखकर शकराज उनसे पूँछता है कि इनमें से ध्रुवस्वामिनी कौन है और वे दोनों अपने-अपने को ध्रुवस्वामिनी बताते हैं। शकराज चिन्ता में पड़ जाता है और कहता है "क्या चिन्ता है यदि मैं दोनों को अपनी रानी समझ लूँ।"48 इतना सुनते ही ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त दोनों कटार निकालकर शकराज से द्वन्द्व युद्ध करते हैं, इस युद्ध में शकराज मारा जाता है।

तीसरे अंकमें शक के दुर्ग के भीतर के दृश्य को दिखाया गया है। जब शकराज की मृत्यु हो जाती है और चन्द्रगुप्त विजयी बन जाता है तब रामगुप्त भी शक के शिविर में पहुँचता है शान्ति पाठ करने के लिए पुरोहित बुलाये जाते हैं उधर शकराज का शव लेने के लिए कोमा और मिहिर देव आते हैं। ध्रुवस्वामिनी के आज्ञा देने पर भी रामगुप्त के सैनिक कोमा और मिहिर देव को मार डालते हैं जिससे सामन्त कुमार के बीच असन्तोष की आग भड़क उठती है इसका अपराधी चन्द्रगुप्त को समझकर उसे बंदी बना लेते हैं जब ध्रुवस्वामिनी चन्द्रगुप्त को प्रेरित और प्रोत्साहित करती हैं तब वह आवेश में आकर लौह-श्रृंखला को तोड़ देता है और अंत में पुरोहित राज परिषद तथा सामन्त वर्ग की सलाह एवं अनुमति से ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त परिणय सूत्र में बँधते हैं। राज्याधिकार की वागडोर चन्द्रगुप्त संभाल लेता है। यहीं पर नाटक समाप्त हो जाता है।

नाटक के केन्द्र में प्रसाद ने नारी-मुक्ति या मोक्ष की समस्या को उठाया है। इसे वे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रखना चाहते हैं। इस समस्या को उठाने के लिए नायिका के रूप में ध्रुवस्वामिनी के चरित्र को प्रस्तुत किया गया है और नाटक की पूरी कथा उसी के इर्द-गिर्द रहती है। जैसा कि डॉ. धजंजय जी लिखते हैं कि-"ध्रुव स्वामिनी की मुक्ति एक लंबी परम्परा की मुक्ति है, जो इतिहास के सन्दर्भ में व्याख्यायित हुई है। जिन घटनाओं और चरित्रों की कल्पना प्रसाद ने नाटक में की है, वे उनके मंतव्य को अर्थ देने में सहयोगी है सबसे बड़ी बात यह है कि इनसे ऐतिहासिकता की हानि तनिक भी नहीं हुई है। रामगुप्त चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी तीन प्रधान चरित्र नाटक में है और ये अपनी वैयक्तिकता लिए हुये हैं कथा के संगठन में नाटककार ने इनका पूरा ध्यान रखा है।"49

ध्रुवस्वामिनी नाटक की केन्द्रीभूत समस्या नारी-समस्या होने के नाते कुछ विद्वान इसे समस्या नाटक मान लेते हैं। बर्नार्डशा ने ऐसे कई समस्या नाटक लिखे हैं जिसमें मात्र एक-एक समस्या ही है किन्तु ध्रुवस्वामिनी नाटक की समस्या वर्नार्डशा के नाटक की तरह नही हैं अपितु उससे प्रेरित जरूर है समस्या नाटकों में अनेकों समस्याएं होती है। जबकि ध्रुवस्वामिनी में एक मात्र एक नारी समस्या ही है इसी का स्पष्टीकरण देते हुए नन्ददुलारे बाजपेयी जी लिखते हैं कि--''वास्तविक समस्या नाटक में केवल एक घटना द्वारा समस्या का चित्रण नहीं किया जाता प्रसाद के ध्रुवस्वामिनी नाटक में समस्या है अवश्य किन्तु वह नाटक समस्या नाटक नहीं है।''50

इस प्रकार यह नाटक नारी समस्या को उठाता है। प्रसाद जी ने ऐतिहासिकता का सहारा लेते हुए इसे जीवत एवं व्यापक बना दिया है। ऐतिहासिक नाटकों में इसका नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है।

स्कन्दगुप्त (जयशंकर प्रसाद)

स्कन्दगुप्त प्रसाद का विशुद्ध ऐतिहासिक नाटक है। प्रसाद ने इस नाटक के प्रारंभ में इसकी ऐतिहासिकता को लेकर एक लंबा-चौड़ा विवरण प्रस्तुत किया गया है। गुप्त वंश का पूरा परिचय खाका द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इसलिए यहाँ पर हमारा उद्देश्य नाटक की ऐतिहासिकता को सिद्ध करना नहीं बल्कि स्कंदगुप्त नाटक पर अपने संक्षिप्त विचार प्रस्तुत, करना है। स्कन्दगुप्त में इस नाटक में विशुद्ध ऐतिहासिक पात्र और काल्पनिक पात्रों का समन्वय किया है। इस पर विचार विमर्श करते हुए

डॉ. धनंजय ने अपनी बात इस प्रकार रखी है- ''स्कन्दगुप्त, कुमारगुप्त, गोविन्दगुप्त, वर्णदत्त, पुरगुप्त, बंधुवर्मा, देवकी अनन्तदेवी ऐतिहासिक हैं। भिटारी के स्तम्भ लेख से पुरगुप्त का कुमार गुप्त के बाद उत्तराधिकारी होना सिद्ध है। चन्द्रगुप्त द्वितीय की दो रानियां थीं, ध्रुवदेवी और कुमारनाग। इनमें पहली से कुमार गुप्त और गोविन्दगुप्त का जन्म हुआ था। इसलिए दोनों को भाई कहना संगत है। पर्णदत्त के सौराष्ट्र के गोप्ता होने का उल्लेख इतिहासकारों ने किया है। मालव नरेश का अस्तित्व तो ऐतिहासिक है पर उसका नाम बन्धुवर्मा ही था यह सन्देहास्पद है। हूण सेनापति का खिंगिल नाम भी काल्पनिक ही प्रतीत होता है। भटार्क, चक्रपालित, पृथ्वीसेन, प्रपंचबुद्धि, जयमाला, कमला, देवसेना, विजया, रामा आदि काल्पनिक पात्र है''।51

स्कन्दगुप्त नाटक की कथा का प्रारम्भ उज्जियनी में गुप्त साम्राज्य के स्कन्धावार से होता है। स्कन्दगुप्त गुप्तवंश के उत्तराधिकार के अव्यवस्थित नियम के कारण उदासीन है। शुरू में ही वह कहता है ''अधिकार सुख कितना मादक और सारहीन है अपने को नियामक और कर्ता समझने की बलवती स्पृदा उससे बेगार कराती है।''52

इस नाटक की कथावस्तु बहुत ही विस्तृत है कभी-कभी तो इसके विखराव के कारण पाठक उलझ जाते हैं। मालव और सौराष्ट्र राज्यों का हूणों के आक्रमण का दबाव बना हुआ है, हूणों की शक्ति दिनों दिन बढ़ रही है उन्हें रोकने के लिए कोई प्रतिरोधात्मक शक्ति नहीं दिखायी दे रही हैं इधर मगध के अन्दर षडयन्त्र भी शुरू हो गया हैं आंतरिक कलह और कुचक्र बढ़ गया है इन षडयन्त्रकारियों के प्रधान नायक भटार्क और अनंत देवी है। इस षडयंत्र का प्रथम शिकार कुमारगुप्त होते हैं।

मालव की रक्षा का भार स्कन्दगुप्त संभालते हैं परन्तु उन्हें भी कुचक्र में फंसा दिया जाता है। उसी समय विजया का स्कन्द से संपर्क होता है और वह स्कन्द की ओर आकर्षित हो जाती है उधर देवसेना का भी आकर्षण स्कन्द के प्रति है किन्तु वह अपने प्रेम को प्रकट नहीं होने देती। उसके प्रेम का प्राकट्य तो तब होता है जब स्कन्द भटार्क के हाथों उसे बचा लेता है जब भटार्क अपने इस षडयंत्र में असफल हो जाता है तब वह दूसरी चाल चलता है। वह शत्रुओं से मिलकर स्कन्द को पराजित करने की योजना बनाता है जिसमें वह सफल हो जाता है। भटार्क नदी के बाँध को तोड़ देता है जिसमें से होकर स्कन्द गुप्त सेना के साथ आ रहा था बाँध के टूटते ही स्कन्दगुप्त सेना के साथ बह जाता है और भटार्क अपने उद्देश्य में सफल हो जाता है। पर्णदत्त देवसेना को लेकर देवकी की पेट भरता है। स्कन्दगुप्त धीरे-धीरे वहाँ पहुँच जाता है और उसे अचानक धन की प्राप्ति भी हो जाती है। भटार्क का वैचारिक परिवर्तन होता है वह अपने किये पर पछतावा है स्कंदगुप्त उसे दुबारा माफ कर देता है एक बार तो भटार्क को स्कन्दगुप्त अपनी मां की हत्या की साजिश के लिए माफ किया था स्कन्दगुप्त धीरे-धीरे सेना संगठित करके हूणों पर चढ़ाई करता है और विजय प्राप्त करता है। विजय प्राप्त करने के प्श्चात स्कन्दगुप्त पूर्वगुप्त को राज्य का भार सौंप देता है। और स्वयं राज्य से दूर जाने का निश्चय कर लेता है। यह नाटक कुल 5 अंकों का है और किसी अंक में सात, किसी में 5 किसी में 6 दृश्य है।

स्कन्दगुप्त नाटक में नाटककार ने राष्ट्र भक्ति परक दृष्टि कोण जहाँ एक ओर अपनाया है वहीं दूसरी ओर तटस्थ भाव से आन्तरिक कलह, वैयक्तिक अन्तर्द्वन्द्व तथा राजनैतिक उठापटक को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी जी लिखते हैं-"प्रसाद जी ने इसमें कथानक की ऐतिहासिकता और राजनीतिक घटनाओं का योग पारिवारिक

और व्यक्तिगत जीवन घटनाओं से कहना चाहा है इसीलिए नाटक के कथानक में इन दोनों घटना समूहों का पारिवारिक संघात होता हैं सभी पात्रों का एक प्क्ष भारतीय राजनीति के परिवर्तन में देखा जाता है और दूसरा व्यक्तिगत स्वार्थभूमि परं इस तरह से सारा वस्तु-विन्यास दो स्तरों पर चलता है जिससे नाटक में अधिक स्वाभाविकता आयी है।"53

स्कन्दगुप्त नाटक में प्रेम की समस्या का भी सुन्दर चित्रण किया गया है इसमें विजया और स्कन्दगुप्त तथा देवकी आदि के प्रेम का चित्रण किया गया है। नाटक के सभी पात्र इस तरह से सामने आते हैं जिससे उनमें कहीं औपचारिकता नहीं दिखती है। ऐतिहासिक पात्रों को केन्द्र में रखते हुए डॉ. धनंजय लिखते हैं-"ऐतिहासिक चरित्रों को भी प्रसाद ने अपने आप विकसित होने दिया गया है, कहीं ऐसा नहीं लगता कि लेखक अपनी तरह से उन्हें कहीं मोड़ रहा हो। अपनी ही धुरी पर पात्रों की सार्थकता नाटकीय संयोजना में सहायक होती है।"54

चन्द्रगुप्त (जयशंकर प्रसाद)

चन्द्रगुप्त नाटक प्रसाद जी का सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक है। इसमें उनके अन्य नाटकों की अपेक्षा कलात्मकता अधिक दृष्टिगत होती है। चन्द्रगुप्त नाटक संस्कृत के मुद्राराक्षस नामक नाटक की कथा पर आधारित है। चंद्रगुप्त के गुरू आचार्य चाण्क्य ने नंदवंश को जड़ साहित नष्ट करने की प्रतिज्ञा की थी और उस प्रतिज्ञा के फलित करने के लिए वे प्रयासरत थे। इसीलिए हर नंद के सिर को धड़ से अलग करने का वचन चाण्क्य चन्द्रगुप्त से ले लेते हैं। चन्द्रगुप्त अपने वचनों को पूरा करने के लिए जी जान से जुट जाता है। इस प्रकार इस कथा को 4 अंकों में विभाजित

करके यह नाटक तैयार किया गया है। इस नाटक की रचना पूर्णरूपेण ऐतिहासिक धरातल पर रखकर की गयी है।

सिन्ध प्रदेश पर यवन आक्रमण करते हैं यवनों के आक्रमण को चाण्क्य रोकने का प्रयास करता है। चाणक्य मगध पर आक्रमण करने के लिए पर्वतेश्वर को अनुमति देता है मगध पर आक्रमण करने के पीछे उसका उद्देश्य नंद से अपने अपमान का बदला लेना है और इसीलिए वह इस तरह योजना तैयार करता है उसके साथ ही साथ मगध राज्य का शासक चन्द्रगुप्त को बनाना चाहता है जिसके लिए वह यथासंभव हर प्रयास करता है। उधर दूसरी तरफ आम्भीक दुश्मन सेना अर्थात यवनों से जाकर मिल जाता है उन्हें सिन्ध नदी को पार करने के लिए आमंत्रित करता है। अलका को आम्भीक के इस षडयंत्र का पता चल जाता है और वह इस षडयंत्र को असफल बना देती है। उसका भाई देश द्रोही है अपने भाई के इस देश-द्रोह का वह खुलकर विरोध करती है। सिंहरण जो मालव का युवराज है अलका की पूरी सहायता करता है। सिकन्दर को उसके सामने पराजित होना पड़ता है तत्पश्चात् पुन: मगध पर सिल्यूकस द्वारा आक्रमण होता है, चंद्रगुप्त सिल्यूकस को पराजित करता है। चाणक्य का अभिमान सफल होता है और उसका स्वाभिमान बना रह जाता है। मगध का सम्राट चंद्रगुप्त को बना दिया जाता है चन्द्रगुप्त का वैवाहिक संबंध सिल्यूकस की बेटी कार्नेलिया से संपन्न होता है। यहीं पर नाटक समाप्त होता है।

चन्द्रगुप्त नाटक, नाटक के तत्वों के आधार पर खरा उतरता है या यों कहें कि प्रसाद ने नाटकीय तत्वों का पूरी तरह से उपयोग किया है। नाटककारों ने अपने नाटकीय कौशल से मुख्य कथा को प्रासंगिक कथाओं से इस कदर जोड़ा है कि कहीं भी उसकी कलात्मकता पर कोई आँच

नहीं आने पाती इस सन्दर्भ को उद्घाटित करते हुए डॉ. धनंजय ने लिखा है कि-"नाटक की मुख्यकथा के साथ प्रासंगिक कथाओं का समापन कुशलता से कराया गया है। यद्यपि प्रासंगिक घटनाओं की अधिकता से कहीं-कहीं उनका सहज प्रवाहकठिन हो गया है, फिर भी उन्हें विश्रृंखल होने से प्रसाद ने बचाया है।"55 चंद्रगुप्त नाटक के पात्रों के चरित्र में वास्तविकता दृष्टिगत होती है इसके पात्र स्कन्दगुप्त के पात्र की तरह वैविध्यपूर्ण नहीं है चन्द्रगुप्त के चरित्र में वीरता है और वह भी कोरी वीरता, वहाँ न मनोवैज्ञानिकता है और न ही नाटकीयता है इसी का उल्लेख करते हुए डॉ. नन्द्रदुलारे बाजपेयी जी लिखते हैं कि-"चंद्रगुप्त नाटक में चरित्र वैविध्य नहीं है जैसा कि स्कन्दगुप्त में है। स्कन्दगुप्त में एक दार्शनिकता मिश्रित वीरत्व पाया जाता है जो अधिक नाटकीय है। उसमें किसी प्रकार की मनोवैज्ञानिक और नाटकीय अभिसंधि के लिए स्थान नहीं है। चन्द्रगुप्त की वस्तु योजना स्कन्द गुप्त की अपेक्षा अधिक शिथिल है।"56

शिव-साधना (हरिकृष्ण प्रेमी)

हिन्दी नाट्य साहित्य के जाने-माने नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी बहुचर्चित एवं सुप्रसिद्ध नाटककार है। उन्होंने अनेकों नाटक और एकांकियां इस विधा को दी हैं। प्रेमी जी ने ऐतिहासिक कथावस्तु को आधार बनाकर अपने नाटक लिखे है, ऐतिहासिक सामाजिक तथा राजनैतिक नाटकों में उनके नाटक एक कड़ी के रूप में जुड़ जाते हैं। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान अंग्रेजों की कूटनीति 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति को प्रेमी जैसे रचनाकारों ने एकता को स्थापित करके विफल कर दिया। डॉ. भगवती प्रसाद के ऐतिहासिकताधारी को युगानुकूल मोड़ने का प्रयत्न किया।

मुगलकालीन भारत की कथावस्तु को अपने नाटकों में अभिव्यक्त करके हिन्दू मुसलमान जातियों में एकता स्थापित करने का उन्होंने सफल प्रयास किया उस समय भारत के राष्ट्र ीय आन्दोलन को हिन्दू-मुसलमानों के वैमनस्य के कारण क्षति पहुँच रही थी। देश में इस समय आन्तरिक एकता की स्थापना की आवश्यकता का अनुभव प्रेमी जी ने किया, उन्होंने अपने अधिकांश नाटकों के विषय-वस्तु का चुनाव इतिहासक के उन्हीं पृष्ठों से किया जिनमें उनकी भावनाओं के अनुरूप बहुत से सूत्र विखरे हुए थे। क्योंकि उनका विश्वास है - 'राष्ट्र ीय एकता का अभाव इस देश की सबसे बड़ी कमजोरी है- यह इतिहास की एक कहानी मात्र नहीं, युग-युग का चिरन्तन सत्य है।''57

प्रेमी जी के ऐतिहासिक नाटकों में पाताल विजय, शिवा-साधना, प्रतिशोध, आहुति, स्वप्नभंग, मित्र विषपान, उद्धार, शपथ, प्रकाश स्तम्भ, रक्षाबंधन, शतरंज के खिलाड़ी, भग्न प्राचीर, कीर्ति स्तम्भ, सांपों की सृष्टि तथा संवत-पर्वतन आदि प्रमुख है। इसके अतिरिक्त उन्होंने सामाजिक, नाटक भी लिखे हैं जैसे ममता, छायावंधन स्वर्ण-विहान आदि। आवश्यकतानुसार उनके ऐतिहासिक नाटकों में से मात्र 'शिव-साधना' की चर्चा हम यहाँ कर रहें हैं।

'शिव-साधना' का रचनाकाल सन् 1932-33 हैं और इसका प्रकाशन सन् 1934-35 में हुआ। यह नाटक 5 अंकों में विभक्त है ऐतिहासिकता के बावजूद इसमें कल्पना का भी भरपूर प्रयोग किया गया है। डॉ. बच्चन सिंह ने तो यहाँ तक कह दिया है कि 'यह ऐतिहासिक नाटक न होकर बहुत कुछ नाटक हो गया है।' इस नाटक के लिखने की प्रेरणा के संदर्भ में स्वयं प्रेमी जी का विचार इस प्रकार है-''अन्तर में कुछ लिखने की बेचैनी लिये हुए मैं गरीब आदमी के 'स्नेहहीन' दीपक की तरह बुझता

सा जलता रहा। एक बार फिर भभक कर अपने आस्तित्व का परिचय देने आया हूँ। यह 'शिवा-साधना' नाटक मेरी वह 'भभक'58 है। इस नाटक में नाटककार ने नायक के रूप में शिवाजी को रखा है शिवाजी के हृदय में देश की स्वतन्त्रता रूपी आग जल रही थी और वे आजीवन उसी आग में जलते रहे।

प्रस्तुत नाटक 5 अंकों और 36 दृश्यों में विभाजित है । तत्कालीन भारत की राजनैतिक स्थितियों को पूरी तरह से इसमें व्यक्त किया गया है। नाटक के प्रथम अंक की शुरूआत शिवाजी साथियों सहित तुलजापुर के भवानी मन्दिर में देश सेवा के संकल्प से होती है। शिवाजी की युद्धरूपी साधना अर्थात 'शिवा-साधना' का प्रारम्भ तोरणगढ़ पर विजय प्राप्त करके, अपने लक्ष्य की प्राप्ति की शुरूआत करते हैं। उन्हें जहाँ इस कार्य की सफलता के लिए माँ जीजाबाई का आशीर्वाद मिलता है वहां पिता शाह जी और दादा कोंडदेव (जो कि तत्कालीन शासकों के शुभेच्छु थे) का सहकार नहीं मिल पाता। बीजापुर के महमूद आदिल ने जब शाह जी को बन्दी बना लिया तब शिवाजी ने दिल्ली के बादशाह थमगल का सहयोग प्राप्त करके अपने पिता को छुड़ाया। शिवाजी की चारित्रिक विशेषता तब और उभर कर सामने आती है जब वे कल्याण देश पर विजय प्राप्त कर लेते हैं और वहाँ पर उनके सैनिकों द्वारा मौलाना अहमद की सुन्दर पुत्रवधू शिवाजी के दरबार में लायी जाती है तब वे उसे माँ कहकर बुलाते हैं। इस प्रकार शिवाजी अनेकों युद्धों का सामना करते हैं और विजय प्राप्त करते हैं। इस अंक के अंत में शिवाजी की पत्नी सईबाई की मृत्यु हो जाती है।

शिव-साधना नाटक के दूसरे अंक में अफजल खाँ के आक्रमण का चित्रण है उसका शिवाजी से द्वन्द्व युद्ध होता है जिसमें उसकी मृत्यु हो जाती है। चारून के किले का पतन हो जाता है इस अंक के अंत में शिवाजी की दूसरी शादी हो जाती है उनकी दूसरी पत्नी सईबाई

अपने सास ससुर से परिचय करती है। इसी तरह से तीसरे अंक में शिवाजी प्रबल गढ़ के किलेदार केसरीसिंह को युद्ध में हरा देते हैं, केसरी सिंह की माँ और पुत्री को आदर के साथ उनके देश पहुँचाते हैं औरंगजेब इसका बदला लेने के लिए साइस्ता खाँ को भेजते हैं, साइस्ता शिवाजी पर घात करने के लिए एक किले में छुपता है संयोगवशात एक रात शिवाजी उसी किले में जाते हैं, अंधेरे के कारण वह वहाँ से चुपके से भाग निकलता है वह भागने में सफल तो हो जाता है लेकिन उसका अंगूठा कट जाता है औरंगजेब इस असफलता के पश्चात् अपने कई सैनिकों को- जयसिंह, दिलेरखाँ, दाउदखाँ, राजा सुजान सिंह तथा रायसिंह सिसौदिया आदि को बदला लेने के लिए भेजता है। रायगढ़ का किला भी शिवाजी ने अपने अधीन कर लिया। जयसिंह शिवाजी से संधि करता है और उन्हें आगरा मुगल दरबार भेजता है जहाँ पर वे 1500 मोहर, तथा 6000 रूप्ये नजराना देते हैं लेकिन जब शिवाजी को जयसिंह के मन्त्रियों के बीच प्रस्तुत किया तब शिवाजी क्रोधित हो गये उन्हें उन्हीं के महल में बन्दी वना दिया गया।

नाटक के चतुर्थ अंक में शिवाजी अपनी कुशलता एवं चतुराई से मिठाई की टोकरी में छिपकर बाहर निकल गये बाहर जाते ही माताजीजाबाई ने उन्हें आदेश दिया और उस आदेश के तहत उन्होंने सिंहगढ़ को अपने अधीन कर लिया तानाजी की मृत्यु के पश्चात शिवाजी का राज्याभिषेक किया गया। नाटक के अन्तिम अंक में महावत खाँ को सेना के साथ औरंगजेब ने भेजा शिवाजी ने जंजीरा तोड़ने का प्रयास किया लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। दक्षिण प्रान्त का सारा क्षेत्र शिवाजी के भगवे झंडे से लहरा उठा।

शिव-साधना नाटक की सम्पूर्ण कथावस्तु विशुद्ध ऐतिहासिक कथावस्तु है। इसकी तमाम घटनाए ऐतिहासिकता के रंग से सराबोर हैं

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इसमें कल्पना का सहारा नहीं लिया गया है अर्थात आवश्यकतानुसार कल्पनातत्व को भी समाहित किया है। शिवा-साधना की भूमिका में ऐतिहासिकता के सन्दर्भ में प्रेमी जी स्वयं लिखते है कि --- ''मैंने नाटक में जो घटनाएं दी हैं, वे बिना ऐतिहासिक आधार के नहीं दी। यह ऐतिहासिक नाटक है। नाटक में इतिहास की अक्षरश: रक्षा करना कठिन कार्य होता है, फिर भी सभी मूल घटनाएं मैंने अक्षरश: इतिहास के अनुसार ही अंकित की हैं, अपितु इतना भी कह सकता हूँ कि ऐतिहासिक घटनाओं के कम आदि का जितना ध्यान इस नाटक में रखा गया है, उतना शायद अब तक किसी ऐतिहासिक नाटक मे न रखा गया होगा।''59

पात्रों का चरित्र-चित्रण एवं उनका संयोजन प्रेमी जी ने बड़े व्यवस्थित ढंग से किया है उनके पात्र देशकाल एवं वातावरण के अनुकूल हैं। पात्रों के चरित्र एवं घटनाओं के सन्दर्भ में प्रेमी जी स्वयं लिखते हैं---

''मैंने इस नाटक में बताया है कि शिवाजी न केवल महाराष्ट्र में बल्कि संपूर्ण भारत में 'जनता का स्वराज्य' स्थापित करना चाहते थे, क्योंकि उनके हृदय में मुसलमानों के प्रति कोई द्वेष न था मेरी इस धारणा की इतिहास भी पुष्टि करता है। आधुनिक इतिहासकारों ने इस बात को एक स्वर से माना है कि शिवाजी ने किसी व्यक्ति को केवल इसलिए नहीं दण्ड दिया कि वह मुसलमान है।''60

वितस्ता की लहरें (लक्ष्मीनारायण मिश्र)

'वितस्ता की लहरें' पं0 लक्ष्मीनारायण मिश्र का सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक है। इस नाटक की पृष्ठभूमि वितस्ता नदी के किनारे

दो अलग जातियों और संस्कृतियों के पारस्परिक टकराव को लेकर तैयार की गयी है, दोनों जातियां अपने सांस्कृतिक विधि-विधान तथा जीवन दर्शन में एक दूसरे से भिन्न थी। वितस्ता की लहरें की पृष्ठभूमि के तहत डॉ. उमेश चन्द्र मिश्र जी लिखते हैं कि "वितस्ता के तट पर दो विभिन्न जातियों और संस्कृतियों की टक्कर हुई थी जो अपने विधि विधान और जीवन दर्शन के विपरीत थी। यवन सैनिकों में विजय का उन्माद था तो पुरू और केकय जनपद के नागरिकों में देश के धर्म और पूर्वजों के आचरण की रक्षा का भार। अपनी ओर से वश इतना कहूँगा कि इस नाटक के लिखने में जातीय मोह या देश के गौरव के प्रति मेरा आग्रह नहीं रहा। नाटक लिखते समय सारे व्यापार जैसे मैं अपनी आँखों से देखता रहा और संवाद सुनता रहा।"61

मिश्र जी ने इस नाटक में कल्पना का भरपूर उपयोग किया है नाटक की शुरूआत केकय नरेश के राजभवन से होती है जहाँ पर राजवधू रोहिणी तथा प्रतिहारियों के पारस्परिक संवाद से पता लगता है कि युवराज रूद्रदत्त वितस्ता के तट पर गये हैं और वहाँ तक्षशिला से पलायन कर वहाँ के नगरवासी आ रहें हैं, जिसमें पारस नरेश दारयबाहू की दो कन्याएं भी हैं और वे सब केकय नरेश के राजभवन में शरण लेंगी। उधर तक्षशिला के महाराज आम्भी की सत्ता समाप्त हो चुकी है वह अब सिकन्दर के अधीन है वहाँ के आचार्य विष्णुगुप्त केकय नरेश की सहायता से अपने देश को यवनों के चंगुल से बचाना चाहते हैं। आम्भी का पुत्र भद्रबाहु आचार्य विष्णुगुप्त के पास अपने पिता के कर्मो का प्रायश्चित करने के लिए आता है।

पारस नरेश दारयबाहू की दो कन्याओं तारा और रजनी में से रजनी युवराज रुद्रदत्त से प्रेम करती है। युवराज की पत्नी रोहिणी को

इस बात की जानकारी भी है और वह उसके इस एक निष्ठ प्रेम पर पूर्ण समर्थन देती है। इसी बीच निषद के राजा और मलिक सुन्दर के सहायक शशिगुप्त केकय नरेश पुरू के पास सलाह करने के लिए पधारते हैं। शशिगुप्त कहता है कि यवन सेनाओं को पूर्व के लिए रास्ता दे दिया जाए, उसके इस प्रस्ताव को महाराज पुरू अस्वीकार कर देते हैं। तभी इस रहस्य का उद्घाटन होता है कि आचार्य विष्णुगुप्त यवनराज को पहले से ही यह वचन दे दिये हैं कि केकय नरेश के द्वारा यवन सेना को पूरब की ओर जाने के लिए रास्ता दिया जायेगा अब महाराज पुरू यवन सेनापति सिकन्दर के पास द्वन्द युद्ध का पैगाम भेजते हैं।

यवन सेना और केकय सेना के बीच घमासान युद्ध होता है जब सिकन्दर को निराशा जनक स्थिति दिखायी देने लगती है तब वह पुरू के साथ विश्वासघात करता है और रातोरात वितस्ता को पार करता है। सिकन्दर राजा शशिगुप्त और आम्भी के सामने अपनी हार स्वीकार करता है और कहता है कि पुरू के साथ वह युद्ध में विजय नहीं प्राप्त कर सकता। उधर सेनापति सेल्यूकस भी सिकन्दर के पास यह सन्देश भेजता है कि तक्षशिला पर नियुक्त किये गये सभी सैनिकों का वध कर दिया गया है और उसकी (सिकन्दर) प्रेयसी ताया का हरण कर लिया गया है सिकन्दर चारों तरफ से निराश हो जाता है और युद्ध को बन्द करने की घोषणा पर विचार करने लगता है। इसी बीच महाराज पुरू का घायल हाथी आकर यवन विजयी को सूँड़ से उठा लेता है और उस पर विराजमान पुरू को विजयी हाथी की सूँड़ से छुड़ा देते हैं।

महाराज पुरू पागल हाथी की सूँड़ से मुक्त हुए सिकन्दर. पुरू के सामने यह स्वीकार करते हैं कि हिंसा तथा नर संहार से प्राप्त हुई विजय उसकी वास्तविक विजय नहीं है उधर ताया जो कि सिकन्दर की प्रेयसी है सबके सामने इस देश की सभ्यता और संस्कृति का गुणगान करती है। सिकन्दर भी पुरू से कहता है कि 'इस देश के किसी भी जन के आप राजा हैं मेरे लिए भी वहीं रहे।'62 नाटक के अंत में पुरू पारस नरेश दाराय बाहू की दूसरी कन्या तारा का हाथ आम्भी के राजकुमार भद्रबाहू के हाथ में दे देते हैं। इस तरह से नाटक सुख, शान्ति और सन्तोष के वातावरण में पूर्ण होता है।

'वितस्ता की लहरें' नाटक पूर्ण ऐतिहासिक नाटक होते हुए भी अपने आप में काल्पनिक तत्वों को समाहित किये हुए है नाटककार ने इसमें काल्पनिक तत्वों का प्रयोग करने में कोई परहेज नहीं रखा है। नाटककार का उद्देश्य बहुत विशाल है वह राष्ट्र ीय एकता स्थापित करना चाहता है इसी सन्दर्भ को लेकर डॉ. धनंजय जी लिखते हैं कि -''प्रस्तुतिकरण में कल्पना का खुलकर उपयोग किया गया है नाटककार जो उद्देश्य लेकर चला है उसे प्रस्थापित करने में इतिहास से बहुत दूर हट गया है इसमें सिकन्दर के आक्रमण के समय विष्णुगुप्त, गांधार, अभिसार, केकय सौभूति आदि अनेक छोटे-छोटे जनपदों को एक में मिलाकर विशाल भारतभूमि की सांस्कृतिक एकता स्थापित करने का प्रयास करता है।''62

शक विजय (उदय शंकर भट्ट)

उदय शंकर भट्ट हिन्दी नाट्य साहित्य के जाने माने

नाटककार हैं। उनकी जितनी पकड़ एवं ख्याति नाटक के क्षेत्र में है उतनी ही कविता के क्षेत्र में भी। उन्होंने भी जयशंकर प्रसाद, प्रेमी की तरह पौराणिक जीवन तथा संस्कृति को अपनी रचना का माध्यम बनाया इनकी रचनाओं में पौराणिक विषय वस्तु को लेकर सगरविजय तथा अम्बा नाटक मुख्य हैं प्राचीनता का प्रमाण देने वाली रचनाओं में विश्वामित्र, मतस्यंगधा तथा मेघदूत आदि प्रमुख हैं। ऐतिहासिकता के क्षेत्र को उन्होंने अपनी नजरों से ओझल नहीं होने दिया उनके प्रमुख ऐतिहासिक नाटकों में दादर, विक्रमादित्य, मुक्तिपथ तथा शक-विजय आदि प्रमुख हैं। उन्होंने लगभग 14 नाट्कृतियों को नाट्य साहित्य जगत में प्रस्तुत किया है, उन्होंने ऐतिहासिक कथा वस्तु के साथ-साथ अपनी बुद्धि-विवेक से काल्पनिक पात्रों को भी जन्म दिया डॉ. जयनाथ नलिन उनकी ऐतिहासिक कथावस्तु के साथ-साथ अपनी बुद्धिविवेक से काल्पनिक पात्रों को भी जन्म दिया। डॉ. जयनाथ नलिन उनकी ऐतिहासिक कथावस्तु के सन्दर्भ पर "प्रकाश डालते हुए लिखा है कि - "भट्ट जी ने इतिहास से वे कथाएं ली जो अनजानी थी और जिनसे हमारे सांस्कृतिक और राष्ट्र तिक और राष्ट्र ीय पतन के बुनियादी कारणों पर प्रकाश पड़ता है।"64

शक विजय की कथावस्तु की ऐतिहासिकता तत्कालीन उज्जयिनी की राजनैतिक परिस्थितियों के समसामयिक सन्दर्भ से जुड़ जाती हैं। इस बात को अधिकांश विद्वान मुक्त मन से स्वीकार करते हैं। इस नाटक के पात्र गन्धर्व सेन, कालकाचार्य, नह्यान तथा सरस्वती पूर्ण ऐतिहासिक है। गन्धर्व सेन, अवन्ती का नरेश है। गंधर्व सेन का नामकरण नाटककार ने भविष्य पुराण के आधार पर किया है, ऐसा लगता है क्योंकि वही उज्जयिनी से शकों को भगाता है किन्तु इस नाटक में उसे (अर्थात गंधर्वसेन) वरदनाम से अभिहित किया गया है। इसके चरित्र का अस्तित्व तो पूर्ण

ऐतिहासिक है किन्तु यह 'वरद' नाम उपजाया हुआ है। स्कन्दपुराण तथा जैन ग्रन्थों में इसी का नाम विक्रमादित्य है जिसने शकों को पराजित किया और अपने नाम से संवत चलाया। कभी-2 तो कुछ पाठक या समीक्षक इस 'वरद' नाम के कारण इसकी ऐतिहासिकता पर प्रश्न चिन्ह लगा देते हैं इस नाटक के काल्पनिक पात्रों में शर्वर, चित्रतुंग, वीरभद्र, सौम्या आदि काल्पनिक पात्र हैं।

नाटककार ने पात्रों के साथ-साथ कथावस्तु में भी आवश्यकतानुसार कल्पनातत्व का उपयोग किया है जैसे नाटक के प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में लाट तथा सौराष्ट्र के गुप्तचरों द्वारा अवन्ती जाकर वहाँ के लोगों में राज के खिलाफ असन्तोष पैदा करना अनैतिहासिक है। इतना ही नहीं मंखली पुत्र तथा महत्मात्य के संवाद में मंखली धर्म को ही कलह का मूल मंत्र मानकर भारत में एक धर्म की स्थापना पर बल दिया गया है। यह बात काल्पनिक होते हुए भी नाटककार के उद्‌देश्य के अनुकूल है। इसी तरह सरस्वती नामक भिक्षुणी को आचार्य कालक के साथ देखकर ज्यादातर लोग जैन धर्म को स्वीकारने लगे हैं। इसलिए अवन्तीकेश देश में व्यभिचार फेलाने के जुर्म में सरस्वती को बन्दी बना लेता है। यही कथा कालकाचार्य कथा में इस प्रकार है-- गर्दभिल्लन द्वारा कालकाचार्य की बहन को बन्दी बना लिया जाता है। नाटककार ने यहाँ और अधिक स्वाभाविकता लाने के लिए कुछ काल्पनिक प्रसंग जोड़े हैं। उदाहरणार्थ सरस्वती के बन्दी बना लेने पर वहाँ की जनता के कुछ लोग नरेश के प्रति विरोध जताते हैं तो कुछ लोग उनका गुणगान भी करते हैं राजा पर अत्याचारी होने का आरोप लगाया जाता है और यह कहा जाता है कि इसके राज्य में कोई सुरक्षा व्यवस्था अब नहीं रह गयी है। मौका पाते ही आचार्य कलक लोगों को भड़काने का प्रयास करता है, नाटककार ने ऐसे प्रसंगों को जोड़कर नाटक में तेजी लाने का प्रयास किया है।

इसी प्रकार कालकाचार्य कथा में है कि कालक अपने इस अपमान का बदला लेने के लिए, तथा अवन्ती नरेश को दण्ड देने के लिए खगकुल जाता है और वहाँ से शकों को भारत ले आता है।65

नाटककार उदयशंकर भट्ट जी ने शक विजय में इसी प्रसंग को इस तरह से प्रस्तुत किया है कि कालक साकल देश में जाकर मद्रकों से सहायता प्राप्त करने का प्रस्ताव रखता है किन्तु, मद्रक गन्धर्व सेन के विरूद्ध जाने को तैयार नहीं है तब कालक सीसतान जाता है साहियों को यहाँ ले आता है। इधर कालक अवन्ती पर चढ़ाई करके गंधर्व सेन को मार देते हैं तथा वहाँ के शासक बन बैठते हैं। इस तरह से नाटककार ने आवश्यकतानुसार कथा में परिवर्तन किया है।

इस परिवर्तित कथावस्तु से किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती इसे रेखांकित करते हुए डॉ. धनंजय ने लिखा है --''नाटककार का परिवर्तन किसी महत्वपूर्ण उद्देश्य की सर्जना नहीं करता है। शकों से युद्ध में जो विशाल नर संहार हुआ उसकी कल्पना मात्र से ही आतंकित तथा भयभीत होकर सरस्वती आत्महत्या कर लेती है। यह अनैतिहासिक चित्रण है। राज्य स्थापना के बाद साहियों द्वारा जो अत्याचार दिखाएं गये हैं उनकी पुष्टि जैन ग्रन्थों से होती है, क्योंकि इस अत्याचार से ऊबकर ही नागरिक उनके विरूद्ध हो गये थे।''66

शक विजय नाटककार की अन्य नाट्यकृतियों की अपेक्षा सफल नाट्य रचना है। नाटककार ने अपनी बुद्धि प्रखरता द्वारा ऐतिहासिक कथावस्तु को परिवर्तित रूप में युगीन सन्दर्भानुसार प्रस्तुत किया है।

तुलनात्मक अनुशीलन :---

संस्कृत तथा हिन्दी दोनों भाषाओं के नाट्याचार्यों एवं नाटककारों ने नाटक की शुरूआत भरतमुनि से मानी है। आचार्य भरतमुनि ने अपने ग्रंथ नाट्यशास्त्र के माध्यम से नाटक की जिस परंपरा का प्रारंभ ऋग्वेदादि को आधार बनाकर किया , वह अद्यावधि विकसित होती दिखाई दे रही है।

जहाँ एक तरफ संस्कृत नाटकों का प्रारंभ महाकवि भाष से माना जाता है वहीं दूसरी तरफ हिन्दी नाटकों का प्रारंभ महाराजा विश्वदेव तथा गिरधरदास के आनंद रघुनंदन तथा नहुष नाटक से माना जाता है। संस्कृत और हिन्दी के नाटकों के आगमन एवं विकास की चर्चा करना यहाँ मेरा उद्देश्य नहीं है। यहाँ पर सिर्फ संस्कृत और हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों पर संक्षिप्त विचार करना है।

संस्कृत में भास रचित लगभग १३ नाटकों में से विद्वानों ने मात्र प्रतिज्ञायौगन्धरायण तथा स्वप्नवासवदत्तम् को ही ऐतिहासिक नाटक की श्रेणी रखा है। और यही से ऐतिहासिक नाटक लिखने की परंपरा भी प्रारंभ होती है। हिन्दी में यह परंपरा भारतेन्दु रचित नीलदेवी नाटक से शुरू होती है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि संस्कृत के ऐतिहासिक नाटक के जन्मदाता भाष तथा हिन्दी ऐतिहासिक नाटक के जन्मदाता भारतेन्दु का ही अनुकरण संस्कृत और हिन्दी के नाटककारों ने किया। और इस परम्परा को सुदृढ़ बनाये रखा। संस्कृत में ऐतिहासिक नाटकों की संख्या बहुत कम है और आज इस भाषा में ऐतिहासिक नाटक के लेखकों का अभाव भी दिखाई देता है। दूसरी तरफ हिन्दी में ऐतिहासिक नाटक लेखन की जो परंपरा भारतेन्दु से प्रारंभ हुई अद्यावधि अबाधगति से चली आ रही है और आज हिन्दी में अनगिनत ऐतिहासि नाटक प्राप्त होते हैं।

मैंने अपने शोध-प्रबंध में ज्यादातर प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों को

ही प्रधानता दी है , इसका मुख्य कारण यह है कि प्रसाद ने संस्कृत नाटकों का ही अनुकरण किया और जो समस्याएँ संस्कृत नाटकों में उपलब्ध होती हैं , वही प्रसाद के नाटकों में देखने को मिलती हैं ।

भास, कालिदास, शूद्रक , विशाखदत्त इत्यादि ऐतिहासिक नाटककारों ने अपने-अपने नाटकों में तत्युगीन पारिवारि, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं को व्यक्त करना चाहा है । ये समस्त समस्याएँ हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में प्राप्त होती हैं । लेकिन दोनों भाषाओं के नाटककारों का व्यक्त करने का नजरिया भिन्न है ।

संस्कृत एवं हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों के संक्षिप्त परिचय नामक अध्याय के अन्तर्गत मैंने दोनों भाषाओं के नाटकों का संक्षिप्त परिचय देने के साथ-साथ इतिहास क्या है ? , ऐतिहासिकता किसे कहते हैं ? , इतिहास एवं ऐतिहासिकता के अन्तर को बताते हुए संस्कृत एवं हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है । दोनों भाषाओं के नाटकों के पात्र भी ऐतिहासिक ही लिये गये हैं चाहे वे संस्कृत नाटक में राजा उदयन, वासवदत्ता या अग्निमित्र हों अथवा हिन्दी नाटक चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, चाणक्य आदि हों ।

निष्कर्षतः दोनों भाषाओं के नाटककारों ने जिन समस्याओं को व्यक्त करना चाहा है वे समस्याएँ काफी हद तक एक हैं ।

सन्दर्भ

1- हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहासतत्व-डॉ. धनंजय -पृ.19

2- हिन्दी के ऐतिहासिक नाटक -डॉ. धनंजय -पृ.11

3- हिन्दी के ऐतिहासिक नाटक -डॉ. धनंजय -पृ.17

4- हरिकृष्ण प्रेमी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व -विश्वप्रकाश दीक्षित, पृ.7

5- प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विवेचन -डॉ. जगदीशचंद्र जोशी ,पृ.9

6- हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहासतत्व -डॉ. धनंजय -पृ.97

7- संस्कृत और हिंदी नाटक : रचना एवं रंगकर्म-डॉ0 जलज, पृ0 47

8- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि - 1/17

9- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि - 1/17

10- मालविकाग्निमित्रम् - भूमिका

11- भास - ए. एस. पी. अय्यर - पृ.3

12- संस्कृत के ऐतिहासिक नाटक -श्याम शर्मा , पृ0 93

13- कथा सरितसागर - 2/1/43

14- कथा सरितसागर - 2/1/44

15- कथा सरितसागर - 2/1/4

16- संस्कृत के ऐतिहासिक नाटक -श्याम शर्मा , पृ.129

17- मृच्छकटिकम् -शूद्रक

18- संस्कृत के ऐतिहासिक नाटक -श्याम शर्मा , पृ.257

19- मृच्छकटिकम् -शूद्रक- 1/19

20- संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास - बलदेव उपाध्याय

21- संस्कृत के ऐतिहासिक नाटक -श्याम शर्मा , पृ.300

22- संस्कृत के ऐतिहासिक नाटक -श्याम शर्मा , पृ.197

23- संस्कृत के ऐतिहासिक नाटक -श्याम शर्मा , पृ.197

24- इन्ट्र ोडक्शन टू दी स्टडी ऑफ मुद्राराक्षस -डॉ. देवस्थली -पृ.57

25- द सोशल प्ले इन संस्कृत -राघवन - पृ.9

26- संस्कृत के ऐतिहासिक नाटक -श्याम शर्मा , पृ.380

27- इस नाटक की भूमिका में लेखक का नाम बताने वाला अंश त्रुटित है, जिसमें से कथानिबद्धम् नाटकं मात्र के आधार पर इसे विज्जिका रचित माना जाता है ।

28- हिस्ट्र ी ऑफ संस्कृत लिटरेचर - पृ.477

29- संस्कृत के ऐतिहासिक नाटक -श्याम शर्मा , पृ.416

30- संस्कृत के ऐतिहासिक नाटक -श्याम शर्मा , पृ.415

31- हिन्दी के ऐतिहासिक नाटक : उनकी मूलभूत प्रवृत्तियाँ और प्रेरक शक्तियाँ - डॉ. नवरत्न कपूर - पृ.111

32- भारतेन्दुयुगीन नाट्यसाहित्य - डॉ. भीमदेव शुक्ल -पृ.175
भारतेन्दुकालीन नाट्यसाहित्य - डॉ. गोपीनाथ तिवारी पृ.233

33- आज का हिन्दी नाटक : प्रगति और प्रभाव -डॉ. दशरथ ओझा - पृ.128

34- हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहासतत्व -डॉ. धनंजय -पृ.382

35- हिन्दी नाटककार - प्रो. जयनाथ नलिन - पृ.45

36- भारतेन्दु ग्रन्थावली - भाग-1, पृ.519

37- भारतेन्दु ग्रन्थावली - भाग-1, पृ.535

38- हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहासतत्व-डॉ. धनंजय-पृ.329-30

39- प्रसादयुगीन नाट्यसाहित्य - डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल -पृ.45

40- प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक -डॉ. धनंजय -पृ.72

41- प्रसादयुगीन नाट्यसाहित्य-डॉ. भगवती प्रसादशुक्ल -पृ.33-34

42- ध्रुवस्वामिनी - जयशंकर प्रसाद - पृ.12

43- ध्रुवस्वामिनी - जयशंकर प्रसाद - पृ.34

44- ध्रुवस्वामिनी - जयशंकर प्रसाद - पृ.34

45- ध्रुवस्वामिनी - जयशंकर प्रसाद - पृ.34

46- ध्रुवस्वामिनी - जयशंकर प्रसाद - पृ.35

47- ध्रुवस्वामिनी - जयशंकर प्रसाद - पृ.35

48- ध्रुवस्वामिनी - जयशंकर प्रसाद - पृ.35

49- प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक -डॉ. धनंजय -पृ.90

50- आधुनिक साहित्य - डॉ. नन्दुलारे वाजपेयी - पृ.250

51- हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहासतत्व-डॉ. धनंजय-पृ.390

52- प्रसाद के संपूर्ण नाटक - पृ.187

53- आधुनिक साहित्य - डॉ. नन्दुलारे वाजपेयी - पृ.244

54- प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक -डॉ. धनंजय -पृ.84

55- प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक -डॉ. धनंजय -पृ.86

56- आधुनिक साहित्य - डॉ. नन्दुलारे वाजपेयी - पृ.247

57- प्रसादयुगीन नाट्यसाहित्य-डॉ. भगवती प्रसादशुक्ल -पृ.130-31

58- प्रसादयुगीन नाट्यसाहित्य-डॉ. भगवती प्रसादशुक्ल -पृ.142

59- नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व -विश्वप्रकाश दीक्षित, पृ.10

60- नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व -विश्वप्रकाश दीक्षित, पृ.10

61- लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक - डॉ. उमेशचंद्र मिश्र - पृ.134

62- लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक - डॉ. उमेशचंद्र मिश्र - पृ.137

63- हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहासतत्व-डॉ. धनंजय-पृ.223-24

64- हिन्दी नाटककार - प्रो. जयनाथ नलिन - पृ.173-74

65- हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहासतत्व-डॉ. धनंजय-पृ.249

66- हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहासतत्व-डॉ. धनंजय-पृ.249